ये फसल उमीदों की हमदम

मध्य बिहार में जनसंहार और किसान संघर्ष

पीपुल्स यूनियन फॉर डैमोक्रैटिक राइट्स
दिल्ली

सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के सदस्यों द्वारा २१ सितम्बर १९९१ को सात भूमिहीन मज़दूरों को सावनबीघा (जहानाबाद) पकड़कर लाया गया और मार डाला गया।

दो दिन बाद, एक अन्य घटना में किसान संघ के सदस्यों ने सात गरीब दलितों को करकटबीघा (पटना) में गोलियों से भून डाला।

एक अक्तूबर को लगभग आधी रात के वक्त रामदोहर पंचायत (गया) की एक बस्ती, तीनडीहा के बटाईदार परिवार के सात सदस्यों को खदेड़कर उनके घरों से बाहर लाया गया और उनकी गर्दनें काट दी गईं। यह माना गया कि यह आक्रमण सनलाइट सेना द्वारा किया गया था।

२३ दिसम्बर की रात को सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के सदस्यों ने मेन और बरसीवां (गया) के दलित टोलों पर धावा बोला जिसमें १० लोगों की जानें गईं।

१२ फरवरी १९९२ की रात को बारा (गया) में ३६ भूमिहार भूस्वामियों को मार दिया गया। माओवादी कम्युनिस्ट केंद्र ने इन हत्याओं की ज़िम्मेवारी अपने सर ली है।

ग्रामीण बिहार में यह हत्याओं की आखरी वारदात अन्य वारदातों के बिलकुल विपरीत जाकर खड़ी होती है, न केवल मरने वाले लोगों की संख्या के मामले में बल्कि इस संदर्भ में भी कि इन हत्याओं को अंजाम देने वाले भूमिहीन, दलित और गरीब किसान थे।

पिछले साल १९ जनवरी को तिसखोरा में १४ लोगों की हत्या के पश्चात, ग्रामीण बिहार में १२० से भी ज्यादा सबसे दबे-कुचले लोग २४ ऐसी खेतिहर संघर्ष से जुड़े हत्याकांडों में अपनी जानें गंवा चुके हैं। इन घटनाओं को या तो आम तौर पर बिहार में सुलगते जातीय युद्ध की अभिव्यंजना मान लिया जाता है या फिर दलितों पर अत्याचार मानकर दरकिनार कर दिया जाता है, परंतु ये घटनाऐं ग्रामीण बिहार नामक एक अजीब-ओ-गरीब चीज़ के मिथकों का हिस्सा बन चुकी हैं। सच्चाई का आधार हालांकि, ग्रामीण बिहार में शक्ति के इस्तेमाल और उसे बनाए रखने में छिपा है, किन रूपों में इस प्रभुत्व को ललकारा जा रहा है और किन हिंसक तरीकों से वर्तमान शक्ति संतुलन को कायम रखने के प्रयास चल रहे हैं। युद्ध में दोनों पक्ष आमने-सामने हैं — एक तरफ निजी सेनाऐं हैं और उनके खिलाफ हैं डटे हैं इस इलाके के मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठन जो मेहनतकश गरीबों को बेहतर ज़िन्दगी के संघर्ष में नेतृत्व दे रहे हैं। सरकार, राजनैतिक दल, अखबार व मीडिया इस लड़ाई में शामिल हैं।

पटना, जहानाबाद और गया जिलों में २७ मार्च से ३ अप्रैल १९९२ तक पीपुल्स यूनियन फॉर डैमोक्रैटिक राइट्स ने इन में से कुछ घटनाओं की छानबीन की। हमारी टीम ने पटना में आकुरी गांव, जहानाबाद में करमचीबीघा, नारायणपुर, इकिल, झिटकौरिया, परसौना और धरनई गांव तथा गया में मेन, बरसीवां, बारा, दिहुरा, तीनडीहा और नारायणपुर गांवों का दौरा किया। टीम ने इस क्षेत्र के विभिन्न संगठनों के कार्यकर्त्ताओं से भी मुलाकात की जिनमें लोक संग्राम मोर्चा, इंडियन पीपुल्स फ्रंट तथा जन सुरक्षा संघर्ष मंच शामिल हैं। हमारी टीम ने जिला स्तर के सिविल और पुलिस अधिकारियों से भी बातचीत की।

विषय-सूची

		पृष्ठ
१.	क्षेत्र पर एक नज़र	२
२.	देहातों में गोलबंदी का हतिहास	३
३.	सामाजिक अंतरविरोधः ज़मीन, मज़दूरी और इज्ज़त	५
	तालिकाः बिहार के मैदानी इलाके में भूमि और जाति	
	तालिकाः कामगारों का व्यवसाय के आधार पर वर्गीकरण	
	कोष्टकः गैर-मजरूआ ज़मीन पर अधिकार का प्रश्न	
४.	उत्पीड़न का आधार	६
५.	किसान संगठन और संघर्ष	११
	कोष्टकः कानून और उसके रखवाले	
	कोष्टकः साक्षरताः किसे परवाह है!	
६.	निजी सेनाएं	१५
७.	खेतिहर तनाव और जनसंहार	१६
८.	गरीबों का संघर्ष और राज्य सत्ता	२३
	कोष्टकः एक पुलिस रेड की कहानी	
	कोष्टकः इंदिरा आवास योजना	

क्षेत्र पर एक नज़र

बिहार में गंगा नदी के दक्षिण और छोटा नागपुर के पठारी इलाकों के उत्तर में फैले मैदानी भाग में पटना, जहानाबाद और गया ज़िले स्थित हैं। आज किसान-संघर्षों के केन्द्र बने इन जिलों में ग्रामीण संघर्ष का लम्बा इतिहास रहा है। चाहे १८५७ के सिपाही विद्रोह में दानापुर छावनी की बगावत हो या २० वीं सदी के शुरूआती दशकों के दौरान जनता के विभिन्न तबकों की लामबंदियां, इस क्षेत्र के गांव ग्रामीण-संघर्षों की आंच में निरंतर तपते आए हैं। पिछले डेढ़ दशकों ने इस क्षेत्र में मार्क्सवादी-लेनिनवादी ग्रुपों से जुड़े अनेक किसान संगठनों को जन्म दिया है। सन १९२० के बाद वाम दलों की अगुवाई में बने किसान संगठनों ने ही सबसे पहले बहुसंख्यक जनता के उत्पीड़न पर अपना ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने भूमिहीन मजदूरों, बटाईदारों और सीमांत किसानों की समस्याओं को सामने रखकर लड़ाई शुरू की। बीसवीं सदी के तीसरे और चौथे दशक में सक्रिय बिहार प्रांतीय किसान सभा जैसे संगठनों ने भी इन तबकों की खूब उपेक्षा की, जो इनके हितों की रक्षा का दम भरते थे। यही हाल १९४७ के बाद की सरकारों का रहा ।

भौगोलिक रूप से इस क्षेत्र की बनावट पेचीदा है। इलाके का अधिकतर हिस्सा बाढ़ में बहकर आई हुई मिट्टी से भरा हुआ है और दक्षिण से उत्तर की तरफ हल्की सी ढलान है। गया जिले के दक्षिणी और पूर्वी भाग में कम उंचाई वाली पहाड़ियों की श्रृंखलाएं चली गई हैं। ये पहाड़ियां जंगलों से भरी पड़ी हैं। किसी अभागें मां-बाप की इकलौती संतान की तरह ही इन तीनों जिलों के पास भी यही इकलौता जंगल बच गया है, जिसे यहां के लोग बहुत सहेज कर रखना चाहते हैं। पुनपुन, फल्गू, दरधा और जमुना नदियां बेखटके इस इलाके से होकर बहती हैं। इन मैदानी इलाकों में प्रवेश के बाद जहानाबाद और उत्तरी गया को पार करती हुई ये नदियां कई छोटी-छोटी धाराओं में बंट जाती हैं और अंततः गंगा में मिल जाती हैं। सोन नदी भोजपुर जिले के साथ, इन ज़िलों की उत्तर-पश्चिमी सीमा बनाती है।

इलाके के ८२ प्रतिशत लोग अपनी जीविका के लिए खेती पर ही निर्भर हैं। शहर में बेलदारी करते या रिक्शा चलाते लोगों के परिवार गांवों में ही रहते हैं। जिन तीन जिलों का हमने दौरा किया, उनमें जहानाबाद कृषि की दृष्टि से सबसे अधिक विकसित है। यहां के कुल ग्रामीण क्षेत्र की ९१ प्रतिशत भूमि पर खेती की जाती है। इस क्षेत्र में खरीफ के मौसम में धान की रोपनी होती है और रबी के मौसम में दालें (मुख्यतः खेसारी) तथा गेंहू बोए जाते हैं। कुल जोती जमीन के दो बटा पांच भाग पर इन्हीं तीन फसलों की खेती होती है। इन ज़िलों के पूर्वी हिस्सों में सिंचाई की अपेक्षाकृत अच्छी व्यवस्था है। पटना और जहानाबाद को सिंचाई के लिए अधिकतर पानी सोन नदी से प्राप्त होता है और गया जिले की सिंचाई मौसमी नदियों के पानी से नहरों द्वारा की जाती है। ये वही मौसमी नदियां हैं जो इस क्षेत्र में पलामू और हज़ारीबाग जिलों से प्रवेश करती हैं। सोन नहर व्यवस्था औपनिवेशिक काल की देन है परंतु अब यह कोताही के लक्षणों को दर्शाने लगी है क्योंकि कई वर्षों से इसकी मरम्मत नहीं की गई है। अरवल जैसे कुछ इलाकों का ९० प्रतिशत सिंचित क्षेत्र इसी पर निर्भर है। लेकिन सिंचाई का यह स्रोत लगातार अपनी क्षमता खोता जा रहा है। ट्यूबवैल और पंपसेट के सिंचाई में इस्तमाल करने से काफी फर्क पड़ा है। आमतौर पर जमींदार (न कि सरकार) पम्पसेट लगाकर पानी खींच लेते हैं। तीनों जिलों की सिंचित जमीन के एक चौथाई से ज्यादा भाग पर हैंडपम्प या ट्यूबवेल से सिंचाई होती है। जमीन के अन्दर के पानी पर पटना सबसे अधिक निर्भर है जहां आधी से ज्यादा जमीन ऐसे ही पानी से सिंचित होती है।

लेकिन सिंचाई के क्षेत्र में अपेक्षित विकास नहीं हो पाया है। ट्यूबवेल और नहरों जैसे सिंचाई के पक्के साधन हरेक ज़िले के एक छोटे से क्षेत्र तक ही सीमित हैं। कुछ प्रखंडों में तो इन साधनों का नामो-निशान तक नहीं है और कई जगहों पर जहां सरकार ने ट्यूबवेल खुदवाए भी हैं, वहां भी उनका होना न होना बराबर है। इस प्रकार यह कोई अजीब बात नहीं है कि मध्य बिहार के मैदानी भाग के सात में से छह ज़िलों पर अक्सर सूखे का खतरा मंडराता रहता है।

एक अच्छे खासे भूभाग, यानि पटना में १४ प्रतिशत, जहानाबाद में २९ प्रतिशत और गया में ४८ प्रतिशत, की पारंपरिक तरीके से सिंचाई की जाती है जिन्हें सरकारी रिकार्ड में 'अन्य स्रोत' कहा जाता है। इनमें मुख्यतः अहार और पाइन जैसे सिंचाई साधन शामिल हैं। अहार धाराओं का रोककर बनाए गए तालाब हैं जबकि पाइन नालियों के जाल हैं। सिंचाई के ये दोनों साधन बारिश के पानी को जमा करते हैं और बरसात के

मौसम के कुछ समय बाद तक ही रह पाते हैं। गया जिले के डुमरिया जैसे कुछ प्रखंडों में तो ऐसे जलाशय ८६ प्रतिशत जमीन की सिंचाई करते हैं। जिन क्षेत्रों में सिंचाई के पक्के साधन आ गए हैं, वहां इन पारंपरिक सिंचाई स्रोतों के इस्तेमाल में लगातार कमी आई है। यहां तक कि ऐसे क्षेत्रों में भी, जहां सिंचाई की आधुनिक सुविधाएं नहीं पहुंच पाई हैं, अहारों और पाइनों का इस्तेमाल लगातार कम होता जा रहा है। अंग्रेज़ों के ज़माने में इन सांझे संसाधनों को बेगारी करवाकर चालू रखा जाता था। परन्तु जमींदारी उन्मूलन के पश्चात ये संसाधन बेकार होते गए, क्योंकि किसी अकेले भूस्वामी को इन्हे दुरुस्त रखने से व्यक्तिगत फायदा नहीं था। इसके अलावा ये अहार और पाइन गांव की काफी ज़मीन को घेर लिया करते थे। इन स्रोतों के बन्द होने और अधिक से अधिक जमीन को खेती योग्य बनाने के दबावों के चलते इन स्रोतों की ज़मीन पर भी जुताई शुरू हो गई है जिससे भूमि-संबन्धी तनावों में बढ़ोतरी हुई है।

सिंचाई के क्षेत्र में आंशिक विकास और हरित क्रांति तकनीक के प्रवेश के अलावा कृषि के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण विकास नहीं हुआ। अस्सी के दशक में तो उत्पादन और उत्पादकता अगर बिलकुल नहीं गिर गई तो अवरुद्ध तो हो ही गई। औद्योगिक आधार कमज़ोर होने की वजह से यहां आधुनिक तकनीक के इस्तेमाल में हिचक बरकरार है। वास्तव में पिछले ४० सालों में मध्य बिहार के मैदानी इलाकों में औद्योगिक विकास लगभग न के बराबर हुआ है। विकास की इस बुरी गत के कारण ही इस क्षेत्र में अपराध और गुण्डागर्दी की संस्कृति पनपी है। ग्रामीण बिहार की अजीब-ओ-गरीब विशिष्टता से मीलों दूर, यह सांस्कृति इस क्षेत्र के विकास के ढांचे की उपज है।

देहातों में गोलबन्दी का इतिहास

औपनिवेशिक काल में इस क्षेत्र में जमींदारी व्यवस्था थी। तनाव के मुख्य कारण जबरदस्ती वसूली और सामंती विशेषाधिकारों के दावे रहा करते थे, जो जमींदार अपने काश्तकारों पर थोपते थे। राजपूतों और भूमिहारों सहित जमींदार मुख्यतः ऊंची जातियों से आते थे। काश्तकारों में मध्य कृषक जातियां थीं – यादव , कुर्मी और कोयरी – और कुछ लोग ऊंची जातियों से भी होते थे।

१९२९ में बनी बिहार प्रांतीय किसान सभा (बी.पी.के. एस.) और बाद में अखिल भारतीय किसान सभा आज़ादी से पहले जमींदारी व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष की अगली पांत मे खड़े थे। इन दोनों संगठनों ने ग्रामीण समाज में मध्य जातियों के काश्तकारों की स्थिति को ऊंची जाति के जमींदारों के प्रभुत्व के खिलाफ मजबूत किया। परन्तु बी.पी.के.एस. का सामाजिक आधार और सरोकार जमींदारों से ठीक निचले वर्ग के किसानों तक ही सीमित था। एक ओर उन्होंने काश्तकारों पर थोपी ऊंची लगान दर, बेगार और अबवाब का सवाल उठाया, तो दूसरी तरफ उन्होंने बकाश्त भूमि जोतने वाले काश्तकारों को लामबंद किया। जमींदारों के सीधे दखल में जमीन बकाश्त भूमि कहलाती है। ऐसी ज़मीन पर काश्तकारों का किसी तरह का अधिकार नहीं था, लगान का दर बहुत उंचा था और उन्हें जब चाहे बेदखल किया जा सकता था। पटना, गया और मुंगेर जिलों में इन काश्तकारों के अधिकारों का आन्दोलन बी. पी. के. एस. का एक महत्वपूर्ण मोर्चा था।

आन्दोलन को काश्तकारों की ऊपरी श्रेणी तक सीमित रखकर बी.पी.के.एस. ने निचली श्रेणियों यानि बटाईदारों और खेतिहर मज़दूरों, के उत्पीड़न को अपने संघर्ष के कार्यक्रम से अलग रखा। विडंबना देखिए कि जो काश्तकार जमींदारी प्रणाली की असमानताओं के खिलाफ बी.पी.के.एस. के नेतृत्व में गोलबन्द हुए थे, वही खुद निचली श्रेणियों के उत्पीड़न में भागेदार थे। ऐसे श्रेणियों को (बटाईदार और खेतिहर मज़दूर) अपने राजनैतिक मसौदे में शामिल न कर पाने की असफलता का सीधा सा मतलब था कि सामाजिक उत्पीड़न के सबसे अहम् मसले को ही नजरअदांज किया जा रहा था। इन तबकों में जुलाहा, कहार, रजवार के साथ-साथ दलित, चमार, दुसाध और मूसहर जैसी निचली जातियों के लोग आते हैं। इन तबकों और बड़े काश्तकारों, जिनमें राजपूत, भूमिहार जैसी ऊंची जातियों और यादव, कुर्मी और कोइरी जैसी मंझोली जातियों के लोग थे, के बीच की खाई और बढ़ती गई क्योंकि मंझोली जातियों, खासंतौर पर यादवों ने ज़मींदारों के अपमानजनक रीति-रिवाज़ों का प्रतिरोध करना शुरू कर दिया था। १९१४ से ही यादवों, कुर्मियों और कोइरियों में सम्बंध बनने शुरू हो गए थे, जो १९३४ तक आते-आते त्रिवेणी संघ के झण्डे तले एक हो गए। उदाहरण के तौर पर पटना जिले

में यादवों ने जनेऊ पहनने के अधिकार की मांग की तथा बेगार करने से साफ इंकार कर दिया। साथ ही उन्होंने अपनी औरतों पर सार्वजनिक स्थानों, यानि बाज़ार में जाकर दूध इत्यादि बेचने पर रोक लगा दी। खेतिहर सामाजिक व्यवस्था के अपेक्षाकृत सुविधासंपन्न तत्वों को आंदोलन के केन्द्र में लाने से सर्वाधिक उत्पीड़ित तबके मानो और भी गुमनामी के अंधेरे में खो गए।

बी.पी.के.एस. के साथ-साथ कांग्रेस भी मध्य बिहार में अपनी उपस्थिति को जहां-तहां बनाए हुए थी। बिहार में, बहुत हद तक कांग्रेस का प्रतिनिधित्व जमींदारों और काश्तकारों की ऊपरी पाँत द्वारा किया जाता था जिनके कब्जे में बड़ी मात्रा में जमीनें थीं। इसलिए छोटे किसानों और जमीन के मुद्दों पर यह पार्टी प्रायः चुप्पी ही साधे रहती थी। १९३६ के फैज़पुर सम्मेलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने जो कार्यक्रम बनाया उसमें उसने नीचे के तबकों की समस्याओं को पूरी तरह से नजरअंदाज कर दिया था। १३ दिशानिर्देशों में से एक भी निचले तबकों की समस्याओं से वास्ता नहीं रखता था। इस तरह से देखा जाए तो इस पार्टी को केवल दो ही वर्ग नजर आ रहे थे – जमींदार और वे काश्तकार, जो जमींदारों के ठीक नीचे थे।

सामाजिक उत्पीड़न के मसलों को कांग्रेस प्रभावशाली ढंग से इसलिए भी नहीं उठा पाई क्योंकि, अपनी ज़रूरतों से बाध्य, उसने अपने आपको एक ऐसी पार्टी के रूप में पेश किया जिसको विभिन्न वर्गों के हितों की रक्षा करनी थी और समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सामंजस्य स्थापित करना था। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट, १९३५ के अंतर्गत गठित प्रांतीय सरकार के प्रधानमंत्री श्रीकृष्ण सिन्हा के वक्तव्य से यह बात साफ जाहिर होती है :

> "सरकार इस बारे में चिंतित है कि देश भर के जमींदारों और काश्तकारों के बीच **पूरा सौहार्द्र** होना चाहिए, सरकार चाहती है कि ये दोनों वर्ग **आध्यात्मिक धरातल पर एक हों** और कर्तव्य की दृष्टि से अपने संबंधों को सुनिश्चित करें।"

(बिहार विधानसभा की कार्यवाही, खंड १, १९३७, बिहार सरकार, १९३८, पृष्ट १९२७, जोर हमारा)

अंग्रेज़ों को देश से निकालने के लिए कांग्रेस द्वारा तय किये गए कार्यक्रम में सामाजिक सौहार्द पर जोर एक मुख्य अंग था। इस तर्क की मान्यता यह थी कि शोषण के मौजूदा ढांचे को बदलने और आज़ाद देश में उत्पीड़ित को बराबरी देने को 'स्वराज' पाने तक स्थगित किया जा सकता है। मूलतः यह तर्क समाज को ज्यों का त्यों रखने के पक्ष में था। कांग्रेस की इस पक्षपातपूर्ण भूमिका पर एक ज़ोरदार टिप्पणी उसी पार्टी से बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री भोला पासवान शास्त्री के वक्तव्य में मिलती है – **"अगर स्वराज होगा तो गरीबों का नहीं होगा।"**

इस तरह जमींदारी के प्रति अपनी निष्ठा रखने वाली कांग्रेस की राष्ट्रवादी राजनीति के कारण और दूसरी तरफ जमींदारों की खिलाफत करने वाली बी.पी.के.एस., क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन की जरूरत को पूरा करने में असफल रहीं, जिसके परिणामस्वरूप मेहनतकश गरीबों के जीवन में कोई बदलाव नहीं आ पाया। लेकिन गोलबंदी की इस प्रकिया में मध्य और पिछड़ी जातियों के काश्तकारों का एक हिस्सा ऊंची जातियों के जमींदारों के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। १९५० के भूमि सुधारों के तहत इस श्रेणी ने जमीन के ऊपर अपने नियंत्रण के साथ-साथ अपनी ताकत और हैसियत को भी बढ़ाना शुरू किया।

इस तरह भूमि-सुधार कार्यक्रम ने दखिलकारों (ज़मीन पर पक्का अधिकार रखने वाले काश्तकार) की सामाजिक प्रतिष्ठा को सुदृढ़ किया जिससे मालिकों की एक नई जमात का जन्म हुआ जो मज़दूर रखते थे और प्रभावी जातियों से आते थे। मध्य जातियों के एक हिस्से के अच्छे खासे प्रतिनिधित्व के कारण इनके पास पुराने जमींदारों से बड़ा सामाजिक आधार था। इन नए अभिजातों ने साठ के दशक में सरकारी तौर पर संचालित हरित क्रांति तकनीक का भी पूरा-पूरा फायदा उठाया। आगे चलकर वे चुनावी दौड़ में भी शामिल हुए और भूस्वामियों की लॉबी और उनके हितों के लिए बड़ी चुनौती बनकर उभरे। एक अर्थ में, आज के बिहार में जनता दल की ताकत में निरंतर बढ़त, मध्य जातियों का राजनीतिक ताकत के रूप में उभरते जाने के तथ्य को ही रेखांकित करती है।

यदि लालू प्रसाद यादव के राज में हुए नरसंहारों का लेखा-जेखा लिया जाए, तो सामाजिक न्याय के नारे की बात तो दूर रही, जनता दल भी पिछली कांग्रेसी सरकारों की तरह ही दलितों के जीवन परअसर डालने वाले मुद्दों पर कुछ नहीं कर पाई है। नई शासन-व्यवस्था में भी गरीबों पर जुल्म और बर्बर दमन अबाध रूप से जारी है।

सामाजिक अंतरविरोधः ज़मीन, मज़दूरी और इज्ज़त

हालांकि इस क्षेत्र में बड़े जमींदार बहुत ही कम संख्या में हैं – देहाती परिवारों में केवल ४ प्रतिशत ही ऐसे परिवार हैं जिनके पास १० एकड़ से अधिक जमीन है – परन्तु उत्तरी गया में टेकारी एस्टेट जैसी पुरानी जागीरों के टूटने ने, इस इलाके में कुछ नए अभिजातों को जन्म दिया। इनमें शामिल हैं छतियाना के महेन्द्र सिंह, जिसके पास ६८० एकड़ जमीन है और मखदुमपुर के तिलक सिंह, जिसके पास करीब ४५० एकड़ जमीन है। तिलक सिंह भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के महत्वपूर्ण स्थानीय नेता भी हैं तथा साथ-साथ 'दो वक्त की रोजी- रोटी' के लिए ट्रांसपोर्ट और व्यापार की गतिविधियां भी चलाते हैं। हालांकि इस क्षेत्र में बड़े जमींदारो के आर्थिक हितों में काफी परिवर्तन आ गया है, परन्तु जमीन पर अधिकार अभी भी आर्थिक शक्ति का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है।

देहातों में ताकत के इस्तेमाल को महज आर्थिक पहलू से ही नहीं समझा जा सकता है, बल्कि कृषि सम्बन्धों को बनाने में जाति भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तालिका १ में दिखाया गया है कि ग्रामीण परिवारों में ६० फीसदी लोग या तो ५ एकड़ जमीन से कम के मालिक हैं या फिर पूरी तरह से भूमिहीन हैं। जिन १० प्रतिशत लोगों का जमीन पर नियंत्रण है, उनमें भी ७२ प्रतिशत लोग ऊंची जातियों से संबंध रखते हैं। बेशक ऊंची जाति के आधिपत्य से किसी तरह से इंकार नहीं किया जा सकता परंतु साथ ही साथ इसका किसी भी तरह का सरलीकरण या सरलीकृत जुड़ाव (बड़े जमींदारों की श्रेणी का ऊंची जाति से) भ्रम पैदा कर सकता है क्योंकि १८ प्रतिशत बड़े जमींदार और ५-१० एकड़ जमीन के मालिकों का २१ प्रतिशत हिस्सा उच्च मध्य और अन्य मध्य जातियों से है। इस तरह, देहातों के वर्गीय ढांचे के ऊपर प्रभुत्व जमाए हुए लोगों का सामाजिक आधार, ऊंची जातियों के घेरे से काफी बड़ा है। किसी भी इलाके में प्रभुत्व वाली जाति समूहों में एकरूपता नहीं है। उदाहरण के तौर पर, पटना जिले के पुनपुन, मसौढ़ी और धनरूआ प्रखंडों में ज़मींदार मुख्यतः कुर्मी हैं, नौबतपुर और बिक्रम में भूमिहार और पाली में यादव, भूमिहार और कोइरी जाति के लोग प्रभावशाली भूस्वामी हैं। जहानाबाद में जमीन पर भूमिहार और कुर्मियों का आधिपत्य है और वे इस इलाके के अभिजातों की श्रेणी में आते हैं जबकि दक्षिण गया में राजपूतों और पठानों का प्रभुत्व है।

खेती-बाड़ी में मुनाफे के अवसर ने, खासकर ऐसे क्षेत्रों में जहां सिंचाई की उचित व्यवस्था है, काश्तकारी के पारंपरिक रूपों को पर्दे के पीछे खिसका दिया है और किराए पर मजदूर रखकर खेती कराने का माध्यम प्रचलन में आया है। राज्य में कृषि की दृष्टि से सबसे अधिक विकसित होने के साथ-साथ पटना, जहानाबाद और गया में खेत मजदूर सबसे अधिक संख्या में बसते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों का ४३-४६ प्रतिशत लोग, अपनी जीविका दूसरों की जमीन पर काम करके कमाते हैं (देखें तालिका-३)

जमींदारों के पास मजदूर नियमित रूप से काम करने के लिए आते रहें, इसके लिए जमींदार लोग पारंपरिक और आधुनिक तरीकों का सहारा लेते हैं। एक तरफ वे हरवाहों को पैसा उधार देकर अगली फसल तक के लिए उनको पक्का कर लेते है। इस रकम को आमतौर पर हरवाहे चुका नहीं पाते और रोजमर्रा की जरूरतों के लिए नए उधार लेने को बाध्य हैं, जिसके फलस्वरूप साल-दर-साल एक ही मालिक के यहां लगुआ मजदूर के रूप में काम करते रहते हैं। आजकल इन मजदूरों को एक साल की अवधि तक के लिए ही पक्का किया जाता है और मानसून के समय, दूसरी फसल का काम शुरू होने से पहले एक बार फिर शर्तें बांध दी जाती हैं। बारा जैसे कुछ गांवों में मज़दूरी की शर्तों को केवल एक फसल के लिए तय किया जाता है। ज्येष्ठ के (मई-जून) महीने में ५०० रुपये का कर्जा एक मजदूर को बांधने के लिए (हल चलाने के समय से लेकर बोने तक) काफी है। थोड़ी अवधि के लिए किए गए ऐसे इंतजाम मालिक-मजदूर के बीच पुराने माई-बाप किस्म (पैतृक स्वरूप के) के संबंधों की जरूरत को कम करते जाते हैं। वैसे आम तौर पर हरवाहों को अपना पेट पालने के लिए थोड़ी बहुत (०.२५ से ०.३७५ एकड़ तक) जमीन जोतने के लिए दे दी जाती है।

दूसरी तरफ मज़दूरों को छुट्टा मज़दूर की तरह दिहाड़ी पर भी रखा जाता है। मज़दूरों की ये दोनों ही श्रेणियां सामाजिक संबंधों के एक अत्यंत शोषणकारी ढांचे के अंदर काम करती हैं। इन जिलों में दिहाड़ी अन्य जगहों से कम है। जहां रोहतास में एक दिन की मजदूरी ४ किलो चावल है, वहीं पटना, जहानाबाद और गया में यह २ से २.५ किलो के बीच है। हरवाहों की दिहाड़ी तो इससे भी कम है। आकुरी के पास के गांवों और बारा जैसे

बिहार के मैदानी इलाके में भूमि और जाति

तालिका १ प्रत्येक जोत-आकार श्रेणी का जाति के आधार पर विभाजन

जोत का आकार (एकड़ में)	जाति आधारित श्रेणियां					
	उच्च	उच्च मध्यम	अन्य मध्यम	अनुसूचित	मुस्लिम	सभी जातियां
भूमिहीन	२.६	१३.१	२३.०	४३.६	१७.१	१०० (४३.१)
५ से कम	२६.३	३०.६	१३.०	१७.६	६.५	१०० (४७.०)
५ से १०	६६.०	२०.७	०.०	०.५	६.७	१०० (५.८)
१० से अधिक	७७.४	११.६	६.०	०.०	४.६	१०० (४.१)

तालिका २ प्रत्येक जाति श्रेणी का जोत-आकार के आधार पर विभाजन

जाति श्रेणियां	जोत का आकार (एकड़ में)				
	भूमिहीन	५ से कम	५ से १०	१० से अधिक	सभी जोत-आकार
उच्च	५.७	६२.१	१७.६	१४.३	१०० (२२.२)
उच्च मध्यम	२५.६	६६.४	५.५	३.२	१०० (२१.७)
अन्य मध्यम	६०.६	३७.६	०.०	१.५	१०० (१६.३)
अनुसूचित	६६.५	३०.४	०.१	०.०	१०० (२७.२)
मुस्लिम	५८.६	३५.४	४.४	१.६	१०० (१२.६)

ध्यान दें: १. सभी आंकड़े प्रतिशत में दर्शाए गए हैं।

२. उच्च जातियों का मतलब है — ब्राह्मण, राजपूत, भूमिहार और कायस्थ।

३. उच्च मध्यम जातियों का मतलब है — यादव, कुर्मी और कोयरी।

४. अन्य मध्यम जातियों में उच्च, उच्च मध्यम और अनुसूचित जातियों के अलावा सभी हिन्दु सम्मलित हैं।

(**स्रोतः** अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय और ए. एन. सिन्हा सामाजिक विज्ञान संस्थान द्वारा अध्ययन (१९८१) पर आधारित)

गांवों में दिनभर के काम का मेहनताना केवल १ किलो चावल है। फसल की कटाई के समय, मजदूर को बारहवां हिस्सा ही दिया जाता है जबकि रोहतास में दसवाँ हिस्सा प्रचलित है। इसके अलावा मजदूर को खाने के लिए सत्तू भी दिया जाता है, लेकिन वह भी गेहूँ और खेसाड़ी का।

मज़दूरी का यह फर्क शायद इस बात पर निर्भर करता है कि जमींदार मजदूरी बढ़ाने की स्थिति को कितना रोक पाता है तथा मज़दूर परिवारों की पलायन क्षमता में किस हद तक बाधक हैं। उसकी यह 'योग्यता' इस बात पर निर्भर करती है कि वह ताकत का इस्तेमाल कितनी खूबी के साथ कर सकता है। डुमरिया में राजपूत और पठान जमींदार मजदूरी दो कच्चा सेर (१.३ किलो) अनाज देकर ही काम चला लेते हैं जबकि दूसरी जाति के लोगों को एक दिन की मजदूरी के रूप में २ किलो अनाज देना पड़ता है।

दक्षिणी गया में उत्पादन के संबंधों का स्वरूप बिलकुल अलग है। पड़ोस के जिले पलामू के समान यहां कुछ राजपूत और पठान परिवारों का ७५० एकड़ जमीन पर नियंत्रण है, जो कई गांवों तक फैला हुआ है। ऐसे मालिक अपने निरीक्षण में खेती के लिए केवल ४ एकड़ जमीन ही रखते हैं और बाकी जमीन को पारंपरिक शोषक परिस्थितियों में बटाई पर दे देते हैं। ऐसी व्यवस्था में उत्पादन का सारा खर्च बटाईदार को उठाना पड़ता है और फसल की कटाई के समय आधा हिस्सा मालिक की झोली में डाल देना पड़ता है। इस तरह यहां मुख्य अंतर्विरोध मालिक और बटाईदार के बीच है, न कि मालिक और मजदूर के बीच।

इन जिलों की आबादी का करीब २७ प्रतिशत अनुसूचित जातियों से है, जैसे चमार, मूसहर और दुसाध (देखें तालिका-२)। इन जातियों को पारंपरिक तौर पर भूमि स्वामित्व की मनाही है। इसी कारण ये दूसरों के लिए ही काम करने को मजबूर हैं। इनमें

तालिका ३

कुल कामगारों और महिला कामगारों का व्यवसाय के आधार पर वर्गीकरण

(केवल ग्रामीण मज़दूरों में)

व्यवसाय	पटना		जहानाबाद		गया		बिहार	
	कुल	महिला	कुल	महिला	कुल	महिला	कुल	महिला
किसान	३६.४१	१७.७०	४४.२६	२४.५४	४५.६८	२६.२६	४७.६६	३३.०५
खेतिहर मजदूर	४५.४६	७५.९८	४४.४६	६६.८२	४३.७१	६६.७४	४०.३६	६०.९०
घरेलू उद्योग	२.६०	२.२१	२.४६	२.०२	२.०८	१.३७	२.२७	२.५६
अन्य	१२.२०	४.८१	८.७३	३.६२	८.५३	२.६३	६.६८	४.२७
कुल	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००	१००.००

(स्रोतः भारतीय जनगणना, १९९१)

मूसहर जाति के लोग सबसे अधिक पिछड़े हुए हैं। अनुसूचित जातियों के दो तिहाई से अधिक परिवारों के पास बिलकुल भी जमीन नहीं है। इस क्षेत्र के खेतिहर मजदूरों में से लगभग आधे लोग इन्हीं अनुसूचित जातियों से हैं।

जमीन के ऊपर मालिकाना हक का संबंध महज भौतिक फायदे से ही नहीं है बल्कि यह दलितों की सामाजिक हैसियत की तरफ भी इशारा करता है जिनको पारंपरिक रूप से जमीन के ऊपर अधिकार से वंचित रखा गया है। जमीन का आबंटन, मुख्यतः गैर-मजरूआ जमीन का, जो कि गैर कानूनी रूप से शक्तिशाली मालिकों के कब्जे में है, इस क्षेत्र में तनाव का मुख्य कारण बनकर उभरता है, विशेषकर जहानाबाद और गया में सत्तर के दशक में उत्पादकता के बढ़ने और मुनाफे वाली गेहूं की खेती में बढ़ोतरी की वजह से सांझी और बेकार पड़ी जमीनों को खेती योग्य बनाया गया। साथ ही आहरोंऔर पाइनों के भर जाने तथा इस्तेमाल न हो पाने की वजह से नई सांझी भूमि उत्पन्न हुई है जो ट्यूबवेलों और पंपसेटों के इस्तेमाल में वृद्धि के कारण अब खेती के काम में लाई जाने लगी है। भूमिहीन और दलित लोग इन जमीनों पर अपने अधिकारों का दावा कर रहे हैं और यही तनाव की मुख्य वजह है।

पहले से ही हाशिए पर सरका दिए गए खेत मजदूरों को जातीय शोषण द्वारा और किनारे कर दिया जाता है। अतः जमीन और मजदूरी के लिए संघर्ष की परिधि लांघकर यह लड़ाई अब इज्जत के लिए भी लड़ी जा रही है। सामाजिक मान्यताओं द्वारा तय किया निचला दर्जा, मालिकों के प्रभुत्व का आधार बना।

इस ऊँच-नीच को गांव के ढांचे के विश्लेषण से ही समझा जा सकता है — मुख्य बसावट गांव के केन्द्र में और खेतों के बीच में दलितों के टोले। ये टोले उत्पादक गतिविधियों का केंद्र होते हुए भी समाज के लिए उनका होना न होना बराबर है। इनके शोषण के कई भिन्न तरीके हैं — एक दलित के सामने से अगर कोई ऊंची जाति का इंसान गुज़र रहा हो तो वह बैठ नहीं सकता, वह न तो हाथ में घड़ी पहन सकता है और न रेडियो ही बजा सकता है। यहां तक कि उसको कमीज पहनने तक का अधिकार नहीं है। वे पक्के घरों में नहीं रह सकते। दलित औरतों को जब मर्जी उठाकर उनका बलात्कार किया जाता है। सामंती समय की 'डोला' जैसी प्रथाएं अभी तक चली आ रही हैं जिसके तहत शादी के बाद पहली रात दुल्हन को मालिक भूस्वामी के पास भेज दिया जाता है। खेतों पर काम करते वक्त दलित औरतों के साथ बुरा सुलूक किया जाता है।

जनगणना के आंकड़े बताते हैं कि पटना, जहानाबाद और गया में ग्रामीण कामगार महिलाओं में से दो तिहाई खेतिहर मजदूर हैं (देखें तालिका- ३)। पुरुष कामगारों में यह अनुपात इससे काफी कम है। कामगार महिलाओं में खेत मजदूरों की बहुतायत एक तरफ सामंती पुरुष प्रधान समाज के मूल्यों की तरफ इंगित करती है, जहां ऊंची जातियों की महिलाओं को घर की चारदीवारी के भीतर बांध कर रखा जाता है और दूसरी तरफ, क्योंकि केवल खेतिहर दलित तथा पिछड़ी जातियों की महिलाएं ही बाहर काम करती हैं, यह बहुतायत इन महिलाओं की पेट भरने की मजबूरी दर्शाती है जो बाजार में अपना श्रम बेचने को बाध्य

गैर-मज़रूआ जमीन पर अधिकार का प्रश्न

अदालतों द्वारा, गैर-मजरूआ भूमि पर गैर-कानूनी कब्ज़े के मामलों को निपटाने की प्रक्रिया एक उल्लेखनीय उदाहरण है कि किस प्रकार देश की न्याय-व्यवस्था ताकतवर जमींदारों के हाथों में भूमिहीनों को उत्पीड़ित करने का एक साधन मात्र बन कर रह गयी है। बिहार में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से पहले, इस प्रकार की भूमि, जमींदारों के हाथों में न होकर, सीधे सरकारी स्वामित्व में थी। इस जमीन का प्रयोग सामुदायिक कामों के लिए किया जा सकता था, जैसे पशु चराना, चारा इकट्ठा करना, मृतकों को दफनाना अथवा हाट लगाने के लिए। किन्तु जमींदार अपनी ताकत के बल पर इस गैर-मजरूआ भूमि पर अधिकार करते चले गए। भूमि-रिकार्डों में ऐसी जमीन को गैर-मजरूआ 'खास' कहा जाने लगा। जो भूमि अभी भी सांझी बची रही , उसे गैर मजरूआ 'आम' का नाम दिया गया। समय बीतने के साथ, जमींदारों ने इस गैर-मजरूआ खास भूमि के टुकड़ो को लगान पर देना भी प्रारम्भ कर दिया जिससे ऐसी जमीन पर उनका अधिकार और भी दृढ़ होता चला गया बेशक कानूनी रूप से इस भूमि के निपटारे का अधिकार केवल सरकार के पास था। किन्तु जमींदारी-प्रथा के अस्तित्व में रहने तक गैर-मजरूआ खास भूमि पर जमींदारों के इस अधिकार को नहीं ललकारा गया।

जमींदारी उन्मूलन के बाद, गैर-मजरूआ खास भूमि पर जमींदारों का स्थानीय अधिकार खत्म हो गया। सैद्धांतिक रूप से, इस भूमि पर अब सरकार अपना नियंत्रण प्राप्त कर सकती थी। बिहार सरकार की वर्तमान नीति के तहत, अब इस भूमि को अनुसूचित जातियों व जनजातियों के भूमिहीन परिवारों में बांटा जाना है। किन्तु जमींदारों द्वारा, पहले लगान पर विभिन्न व्यक्तियों को हस्तांतरित की गई भूमि पर दुबारा नियत्रंण पाना एक विकट समस्या है। बिहार भूमि सुधार अधिनियम (१९५०) के बनने पर, जमींदारों को दूसरों को हस्तांतरित की गई गैर-मजरूआ खास भूमि का सरकार को रिटर्न भेजना आवश्यक हो गया। किन्तु इस भूमि पर, हस्तांतरण के बाद जिनका नियंत्रण था, उन्हें कानूनी रूप से बेदखल नहीं किया जा सकता था। प्रमाण के रूप में उनके पास रिटर्न की रसीदें थीं, जो जमींदारों द्वारा भरी जाती थीं। क्योंकि उस समय जमींदारों द्वारा गैर-मजरूआ खास ज़मीन के निबटारे का कानूनी प्रावधान बनाया गया था और स्थानीय सर्किल अधिकारी को किसी भी व्यक्ति के नाम में जमाबन्दी (लगान-खाते) खोलने का अधिकार था। १९६५ में इस प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। जिलाधिकारी के अनुसार, कई मामलों में जमींदारों द्वारा कभी रिटर्न जमा नहीं कराई गई और इसलिए गैर-मजरूआ खास भूमि पर अधिकार रखने वालों के पास कब्जे का कोई प्रमाण मौजूद नहीं है। किन्तु ऐसे मामलों में भी शायद ही कभी प्रशासन ने इस भूमि को अपने अधिकार में लेकर पुनः आबंटन करने की कोई कोशिश की हो। यदि कभी ऐसी कोई कोशिश की भी गई तो भूमि पर कब्जे वाले लोगों ने अदालत का सहारा ले लिया। और अदालत ने, बिना यह निश्चित किए कि इन लोगों के पास जमींदारों द्वारा जमा कराई गई रिटर्न के कागज़ात हैं अथवा नहीं, इनके पक्ष में निर्णय दिए। जहानाबाद के ज़िलाधिकारी ने टीम को ऐसे दो मामलों के बारे में बताया – उमता में तिलक सिंह व छतियाना में महेन्द्र सिंह का ६० एकड़ गैर-मजरूआ खास भूमि पर गैर कानूनी नियंत्रण है। प्रशासन ने इन मामलों में पहलकदमी करने की कोशिश की। फलस्वरूप दोनों ही मामले अब उच्च न्यायालय में विचाराधीन हैं। ज़िलाधिकारी के अनुसार यदि प्रशासन उच्च न्यायालय में दोनों मामले हार जाता है तो वे उच्चतम न्यायालय में अपील करेंगे।

दूसरी तरफ किसान संघर्ष में लगे संगठन, ताकत के बल पर, गैर-मजरूआ भूमि पर अधिकार स्थापित कर उसे भूमिहीनों में बांट रहे हैं। प्रशासन, चुप्पी साधे, इन संघर्षों के बल पर अपने कानूनों को लागू होता देख रहा है। दूसरी तरफ मालिक व उनकी निजी सेनाएं इन संघर्षों को पूरी तरह कुचलने पर आमादा हैं। नारायणपुर, जहानाबाद में मजदूर किसान संग्राम समिति के नेतृत्व में चल रहे संघर्ष के फलस्वरूप ३.५ एकड़ गैर-मजरूआ भूमि को मालिकों से आज़ाद करा लिया गया। प्रतिशोध स्वरूप सवर्ण लिबरेशन फ्रंट द्वारा सावनबीघा में इस गांव के तीन दलितों की जान ले ली गई। उक्त भूमि ज्यों की त्यों विवाद के घेरे में है।

हैं। पिछड़ी जाति के परिवार भी आर्थिक स्थिति बेहतर होते ही महिलाओं को वापस घर में बंद कर देते हैं। बेशक इसकी एक वजह, उच्च जातियों के पितृसत्तात्मक मूल्यों को अपनाना हो सकती है परन्तु यह खेत में काम करने वाली महिलाओं द्वारा भुगती जाने वाली यंत्रणा की प्रतिक्रिया भी है क्योंकि आखिकार औरत को ही वर्ग, जाति और लिंग के शोषण और उत्पीड़न को सबसे ज्यादा भोगना पड़ता है।

इन ज़िलों में मुख्य अंतर्विरोधों को सरलीकृत ढंग से ऊंची जाति या वर्ग और नीची जाति या वर्ग के स्पष्ट दिखने वाले और न नकारे जा सकने वाले ध्रुवीकरण के रूप में नहीं देखा जा सकता। इस तरह का विश्लेषण उन लोगों की भूमिका का ठीक से आकलन नहीं कर पाता, जो ग्रामीण व्यवस्था की मध्यवर्ती श्रेणियों से आते हैं और इस पूरे प्रकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन बीच के तबकों में जहां राजपूत और भूमिहारों से लेकर पिछड़ी जातियां और हरिजन तक शामिल हैं, वहां शोषक से शोषित तक ग्रामीण व्यवस्था के सारे स्तर भी मौजूद हैं। उच्च मध्य जातियों में २५ प्रतिशत से अधिक परिवार और अन्य मध्य जातियों में ६० प्रतिशत परिवार भूमिहीन हैं। इस तथ्य के बावजूद इनमें से कुछ ने भूमि सुधार कार्यक्रमों और हरित क्रांति का जमकर फायदा उठाया है (देखें तालिका-२)। जमीन पर अधिकार वह चाहे आधी एकड़ जमीन पर ही क्यों न हो, समाज में ताकत का परिचायक है। इसका अंदाज़ा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि तीन-चौथाई उच्च मध्य जाति परिवारों के पास जमीन है जबकि अन्य मध्य जातियों में ४० प्रतिशत से भी कम परिवारों का जमीन पर स्वामित्व है (देखें तालिका-२)। भूमिहीन परिवारों में अन्य मध्य जातियों का हिस्सा, पांच एकड़ से कम जमीन वाले परिवारों में उन जातियों के हिस्से से काफी ज्यादा है (देखें तालिका-१)।

यादवों, कुर्मियों और कोइरी जातियों से आए नव-धनाढ्य तत्व भी गरीबों के प्रति अत्याचार के मामले में अपने उच्च जातियों वाले भाई-बंदों जैसे ही हैं। इस तरह कुर्मियों और यादवों से संबंधित भूमि सेना और लोरिक सेना भी राजपूतों और भूमिहारों की सेनाओं (कुंवर सेना और ब्रह्मर्षि सेना) जैसा ही कहर बरपाती हैं। अपराधों की जांच से संबंधित एक रिपोर्ट के अनुसार १९७६-१९८९ के बीच अलग-अलग हत्याकांडों में पिछड़ी जातियों द्वारा ७७९ लोग मारे गए जिनमें ७५ दलित थे। इसी दौरान ऊंची जाति के लोगों ने १०२ लोगों की हत्या की। दलित केवल तीन घटनाओं में आक्रामक रहे, जिनमें उनके द्वारा १४ लोग मारे गये। इसी दौरान उच्च जातियों तथा पिछड़ी जातियों द्वारा किए गए आक्रमण में ९६ दलित मारे गए।

हिसाब से देखें तो सत्ता और प्रभुत्व के लिए हिंसा का नियमित इस्तेमाल ग्रामीण समाज की विशेषता जान पड़ती है। यही उत्पीड़न का आधार है और ग्रामीण समाज का ध्रुवीकरण भी इसी पर टिका है।

उत्पीड़न का आधार

उत्पादन के सबसे प्रमुख साधन – ज़मीन – पर नियंत्रण की हद और खेती में पारिवारिक श्रम की तुलना में दिहाड़ी प्रथा का इस्तेमाल – ये दो ऐसे तत्व हैं जिनके आधार पर मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठन कृषक वर्गीकरण का विश्लेषण करते हैं। इन दो मापदण्डों के आधार पर खेतिहर आबादी पांच परतों में वर्गीकृत है। इसके एक सिरे पर जमींदार हैं, जिनके पास बहुतायत में ज़मीन है और जो दूसरों से ही इन जमीनों पर खेती करवाते हैं; दूसरे सिरे पर खेतिहर मजदूर हैं जो पूरी तरह से दूसरों के लिए श्रम करने को मजबूर हैं। और इन दोनों के बीच में अमीर, मध्यम और गरीब किसान आते हैं। अमीर किसान बाज़ारों में फसल को बेचने के लिए भी काफी मात्रा में अतिरिक्त उत्पादन कर लेते हैं, पर जमींदारों से विपरीत, ये फिर भी कभी-कभी खेतों में शारीरिक श्रम करते हैं। मध्यम किसान अपने इस्तेमाल भर के लिए ही फसल उगा पाते हैं जिसमें वे मुख्यतः पारिवारिक श्रम का ही इस्तेमाल करते हैं। गरीब किसान अधिकतर दूसरों के खेतों पर काम करते हैं क्योंकि उनके खुद के पास जोतने के लिए बहुत कम जमीन होती है जिसकी पैदावार से वे अपनी जीविका नहीं चला सकते। इस विश्लेषण से हम पाते हैं कि ग्रामीण समाज की मुख्य दरार के एक तरफ अमीर किसान और जमींदार हैं तथा दूसरी तरफ गरीब किसान और खेतिहर मजदूर हैं।

लेकिन गांवों में शक्ति और प्रभुत्व के आधारों और तनावों की प्रकृति को देखते हुए ग्रामीण समाज का ध्रुवीकरण केवल उस आर्थिक तरीके से नहीं किया जा सकता, जो कि ऊपर दिया गया है। शक्ति का प्रयोग, सामाजिक प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए किया जाता है जिसका अर्थ है दूसरों को आत्म-सम्मान व इज्ज़त की जिन्दगी से वंचित रखकर अपने

अधीन करना। जातिगत पहचान भी वर्गीकरण की प्रक्रिया और स्वरूप को तय करती है। यह पहचान प्रत्येक वर्ग के भीतर ही अंतर्विरोध उपजा सकती है या वर्ग के पार भी गठजोड़ों को जन्म दे सकती है। अत्याचारी ढांचों के खिलाफ लड़ रहे लोगों के लिए उपरोक्त बात का अर्थ है कि मेहनतकश गरीब जनता के शोषक केवल बड़े भूस्वामी नहीं हैं।

उत्पीड़ित जनता व उनके बीच काम कर रहे संगठनों की दृष्टि, ग्रामीण शक्ति संबंधों के इस पेचीदापन पर और अधिक रोशनी डालती है। जनता की नजरों में शोषक वे हैं जो उन्हें जबर्दस्ती कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर करके उनके आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचाते हैं, जमीन को उनकी पहुंच से बाहर रखते हैं और उनको अपमानजनक जीवन जीने के लिए मजबूर करते हैं। ऐसी घृणित प्रवृत्ति वाले मालिकों को स्थानीय तौर पर जमींदारों और सामंतों के नाम से जाना जाता है। भूमि स्वामित्व की मात्रा का जमींदार या सामंत के रूप में एक व्यक्ति की पहचान से सीधा व सरल सम्बन्ध नहीं है। यह पहचान वास्तव में मजदूरों को किराए पर लेने की क्षमता से जुड़ी है और साथ ही इसका सीधा संबंध आक्रमणकारी और शोषणकारी मानसिकता से भी है जिसे सामंती विचार भी कहा जा सकता है जो आम तौर पर गरीब जनता और विशेषतः औरतों के प्रति कठोर अत्याचारी रवैया रखती है और उनकी इज्जत को खेल समझती है।

बारा के संदर्भ में इस बात को साफ तौर पर समझा जा सकता है। इस गांव में अभी हाल में ३६ भूमिहारों की एम.सी.सी. द्वारा हत्या कर दी गई थी। हमारी टीम ने बारा के कई भूमिहारों से बातचीत की और पाया कि लगभग किसी के पास भी एक हल से ज्यादा जमीन नहीं थी, अर्थात ४ एकड़ से अधिक जोत वाला कोई परिवार नहीं था। यदि किसी के पास ५-६ एकड़ जमीन हो भी तो दूसरा हल रखना फायदेमंद नहीं होता क्योंकि जरूरत के वक्त हल किराए पर ले लिया जा सकता है। भूमिहार समुदाय के केवल २ या ३ परिवारों के पास ही इतनी मात्रा में जमीन पाई गई जिसे जोतने के लिए दो हलों की जरूरत हो। परंतु दस एकड़ से अधिक जमीन तो किसी के भी पास नहीं ही थी। बड़े भूस्वामी न होने के बावजूद भी किराए पर मजदूर रख कर काम करवाने का चलन आम है। इसकी वजह है कि पारंपरिक दबाव से इस ऊंची जाति को शारीरिक श्रम करने की मनाही थी। हालांकि वर्तमान समय की भौतिक जरूरतों ने मर्दों को खेतों में काम करने को मजबूर किया है, औरतों को अभी भी खेतों से दूर रखा जाता है। पूरे समय हरवाहा रखना तथा रोपनी, गुड़ाई और कटाई जैसे मुख्य कार्यों के लिए मजदूरों को रखने की प्रथा है।

बारा का, खेतिहर मजदूरों और दलितों द्वारा बदले की कार्यवाही का केन्द्र बन जाने के कारणों को समझ पाना असंभव हो जायेगा, अगर यह मान कर चला जाए कि आक्रमण का निशाना जमींदार अथवा धनी किसान थे। बारा के निशाना बनने के कारण कहीं और छिपे हैं।

बारा संभवतः एक चुना हुआ गांव था, क्योंकि उसके निवासियों के सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के नेता रामाधार सिंह तथा उसके नज़दीकी लोगों नवल सिंह और हरिद्वार सिंह से सीधे सम्बंध थे। पड़ोस के गांव के एक स्कूल शिक्षक के अनुसार — हालांकि बारा स्वर्ण लिबरेशन फ्रंट की बैठकों का अड्डा नहीं था लेकिन इस गांव के भूमिहारों का एक अच्छा-खासा हिस्सा फ्रंट द्वारा अन्य जगहों पर आयोजित बैठकों और गतिविधियों में ज़ोर-शोर से हिस्सा लेता था जिनमें सावनबीघा और मेन-बरसीवां हत्याकाण्ड शामिल हैं। इसके अलावा बारा के भूस्वामी अपने खेतों पर काम करने वाले मजदूरों से भी बुरे बरताव तथा अपनी सामंती मानसिकता के लिए बदनाम थे। उक्त शिक्षक के अनुसार पटना में यादव व कुर्मी तथा जहानाबाद में कुर्मी जाति के लोगों ने ठीक उसी तरह से शोषक चरित्र को दर्शाया है जिस तरह कि गया में स्वर्ण लिबरेशन फ्रंट से जुड़े भूमिहारों ने। एक शक्तिशाली जाति के वो सदस्य, जिनका एक विशेष दृष्टिकोण (सामंती विचार) है, उन्हे शोषक की संज्ञा दी जा सकती है — जो बड़े भूस्वामी न होते हुए भी अपनी शक्ति को गरीब मजदूरों के खिलाफ लगाते हैं।

राज सत्ता और उस पर अधिकार जमाने वालों के बीच का संबंध, जो ग्रामीण सत्ता का एक पहलू है, अभी तक अवर्णित रहा है। राज सत्ता की इस मशीनरी में नागरिक और पुलिस-प्रशासन, राजनेता तथा न्यायपालिका आते हैं। यही जुड़ाव ग्रामीण शोषकों का वास्तविक आधार होता है, जिसकी व्याख्या बाद में की गई है। इस तरह उत्पीड़न के आधार में सामंतों की सत्ता के गलियारों तक पहुंच भी सम्मिलित होती है। संक्षेप में, जिन्हें शोषक माना जाता है वे अपने आप में तीन तरह की शक्ति को इस्तेमाल करने की क्षमता रखते हैं: पहली, आर्थिक शक्ति, जो जमीन पर स्वामित्व से तथा किराये पर मजदूर रखने की क्षमता से आती है हालांकि इसके लिए बड़ा जोत क्षेत्र होना जरूरी नहीं है; दूसरी, समाजिक शक्ति, जो प्रभावशाली जाति का सदस्य होने से मिले सामाजिक रुतबे पर आधारित है जिससे समान विश्व दृष्टिकोण वाले व्यक्तियों तथा सत्ता के गलियारों में संबंध जोड़ने

में सहायता मिलती है; और तीसरी, बाहुबल शक्ति, जो श्रम दशाओं के खिलाफ लड़ते मजदूरों को धमकाने की क्षमता पर निर्भर है। आर्थिक शक्ति, सामाजिक शक्ति और बाहुबल शक्ति एक-दूसरे को और अधिक बल प्रदान करती हैं और ये तीनों मिलकर पटना, जहानाबाद और गया जिलों में शक्तिशाली समूहों की प्रभुसत्ता का रहस्य खोलती हैं।

इस प्रभुसत्ता के खिलाफ आवाज उठाने के लिए यह आवश्यक है कि उत्पीड़ितों की जीवन दशा के तीनों निर्धारक पहलुओं — आर्थिक, सामाजिक और बाहुबल — को समझा जाए। क्षेत्र में मार्क्सवादी- लेनिनवादियों के आगमन से ग्रामीण समाज के दबे-कुचले लोग खेतिहर संघर्ष के केन्द्र में आये हैं और उनकी मांगों को अभिव्यक्ति मिली है।

किसान संगठन और संघर्ष

माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर (एम.सी.सी.) से जुड़े जन सुरक्षा संघर्ष मंच (जे.एस.एस.एम.) और क्रांतिकारी किसान संगठन (के.के.एस.), सी.पी.आई (एम.एल.) पार्टी यूनिटी से जुड़े मजदूर किसान मुक्ति मंच (एम.के.एम.एम) और लोक संग्राम मोर्चा (एल.एस.एम.) तथा सी.पी.आई. (एम.एल.) लिबरेशन से जुड़े बिहार प्रदेश किसान सभा व इंडियन पीपुल्स फ्रंट (आई. पी.एफ.) कृषि संघर्ष की अगुआई कर रहे हैं। १९८६ में अरवल जनसंहार के बाद से प्रतिबन्धित मजदूर किसान संग्राम समिति (एम.के.एस.एस.) को ही अब एम.के.एम.एम. के नाम से पुनर्जीवित किया गया है। अस्सी के दशक में इन संगठनों का बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभाव बहुत अधिक बढ़ा। इनकी गतिविधियां मध्य बिहार के मैदानी इलाकों में सब तरफ फैल गईं और अब आगे फैला पठारी क्षेत्र अगला पड़ाव है। सदियों से ग्रामीण समाज के हाशिये पर रहते आए लोगों को संगठित करके भूमि पर उनके अधिकार, उचित मज़दूरी का दावा और इज्जत से जीवन बसर करने के मुद्दों पर ये संगठन संघर्षरत हैं तथा सत्ता और उत्पीड़न के आधार को ललकार रहें हैं।

शुरूआती दौर में इन संगठनों ने देहाती समाज में फैले अपराधों, डकैतियों, पम्पसैट व पशु-चोरी तथा फसलों की लूट के खिलाफ काम करके अपना आधार तैयार किया। ये अपराध गांवों में रोज़ाना चलते उत्पीड़न का एक अनिवार्य हिस्सा बन चुके हैं। इन अपराधों को रोकने में संगठनों को मिली सफलता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि पुलिस अधिकारी भी स्वीकार करते हैं कि नक्सलियों के आधार क्षेत्रों में इस प्रकार के अपराध लगभग गायब हो चुके हैं।

इन संगठनों ने गैर मजरूआ और फाजिल जमीन पर भूमिहीन उत्पीड़ितों के अधिकार को लेकर चल रहे संघर्ष को अपना मुख्य कार्यक्रम बनाया है। सोन नदी की धारा के राह बदल लेने से उत्पन्न १००० एकड़ दियारा भूमि पर, जलपुरा (पटना) के चारों तरफ फैले गांवों के भूमिहीन दलित आज अपने अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे हैं; और इस संघर्ष का नेतृत्व संभाला है एम.के.एम.एम. ने। गया ज़िले में ही एम.सी.सी. ने ४५०० एकड़ ज़मीन भूमिहीनों में बांट दी है। अहियापुर में ८०० एकड़ जमीन के मालिक नरेश सिंह की भूमि जब इसी प्रकार हथिया ली गई तो उसने गांववालों को डराना-धमकाना शुरू कर दिया। एक पूरी फसल बिना जोते छोड़ दी गई। अंत में मसला सुलझने पर पड़ोसी गांवों के १०० भूमिहीन परिवारों ने इस जमीन पर खेती करनी शुरू कर दी, जिनमें यादव, बढ़ई, चमार और दुसाध शामिल हैं।

जमींदारों द्वारा गैर कानूनी ढंग से हथिया ली गयी गांव की भूमि पर अपना अधिकार सिद्ध करने के लिए चल रहा संघर्ष एक लम्बी व दीर्घकालीन लड़ाई है। पांच वर्ष पूर्व परसौना (जहानाबाद) में २२ एकड़ गैर-मजरूआ भूमि पर एम.के.एम.एम. के नेतृत्व में गांववालों ने कब्जा करके वहां धान की बुआई शुरू कर दी। इसके पहले इस भूमि पर शगुनी के एक जमींदार का अधिकार था। कटाई का समय आने पर मालिक के गुण्डों ने गांव पर हमला किया और फसल काट कर ले गए। इस हमले में दो लोगों को चोटें आईं। इसपर गांववालों ने उस ज़मीन का बहिष्कार कर दिया। दो बरस बाद भूमि लोधीपुर के एक यादव जमींदार सुधीर कुमार को बेच दी गई और अब यह ज़मीन नजदीक के एक गांव के लोगों को बटाई पर दे दी गई है। इसी ज़मीन के पास तीन वर्ष पूर्व एक पुलिस चौकी बनाई गई थी, जिसका काम है गांव की इस सांझी जमीन पर सुधीर कुमार के स्वामित्व की रक्षा करना।

दक्षिणी गया में वन भूमि पर अधिकारों की लड़ाई के चलते गांववालों ने जगंल के गार्डों की मौजूदगी को गैरज़रूरी बना दिया है। एम.सी.सी. द्वारा लागू कानून के अनुसार अब कोई जंगल से पेड़ काट कर बाज़ार में नहीं बेच सकता। साथ ही गांववासियों को जगंल से जलावन की लकड़ी तथा कुछ और वन

उत्पाद अपनी ज़रूरत के लिए इकट्ठा करने की इजाज़त दी गई है और वह भी सप्ताह में केवल एक बार ताकि जंगल के अस्तित्व को बनाए रखा जा सके। शायद यही कारण है कि एम.सी.सी. को इस पूरे क्षेत्र में 'जंगल पार्टी' के नाम से जाना जाता है।

जहां एक ओर प्रशासन देहाती इलाकों में न्यूनतम मज़दूरी का कानून लागू करवाने में पूरी तरह से हार चुका है, वहीं मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठन, हड़तालों के बल पर, मज़दूरी की दर कुछ गांवों में तो ३.५ किलो अनाज तक बढ़वा चुके हैं। परसीना में मज़दूरी दर के लिए लगातार ३ वर्ष तक संघर्ष चला और अब मज़दूरी १ किलो से बढ़कर ३ किलो अनाज हो गई है। इस गांव में हड़तालों की सफलता ने आसपास के गांवों पर भी असर डाला है।

संघर्ष केवल इसी बात पर नहीं चल रहा कि दैनिक मज़दूरी में कितना अनाज मिलना चाहिए, बल्कि सत्तू और पन्जा की मात्रा तथा खेत में काम करते समय भोजन की व्यवस्था दो अन्य मुद्दे हैं जिन्हें लेकर खेत मजदूर अपनी आवाज उठा रहे

कानून और उसके रखवाले

हाल ही में नियुक्त हुए जिलाधिकारियों और पुलिस अधीक्षकों का कहना है कि कानून व व्यवस्था को बनाए रखने के सभी प्रयत्न तब तक बेकार हैं, जब तक देहाती क्षेत्र में कुछ आधारभूत संरचनात्मक परिवर्तन नहीं लाए जाते और ऐसा केवल तभी संभव है जब भूमि- सुधार कार्यक्रमों को लागू किया जाए। उनका कहना है कि भूमिहीनों को गैर-मजरूआ जमीन बांटे बिना व सीलिंग एक्ट लागू किये बिना किसी तरह का सुधार संभव नहीं है। जहानाबाद व गया, दोनों जिलों के जिलाधिकारीयों का कहना है कि वे इसी प्रक्रिया में लगे हैं। वे इस बात की ओर भी इशारा करते हैं कि रास्ता बहुत लम्बा व घुमावदार खासतौर पर इसलिए है क्योंकि न्यायपालिका उनके पक्ष में नहीं है। उनसे पहले आए प्रशासकों की उदासीनता ने भी इस प्रक्रिया को और कठिन बना दिया है । बारा में हुई हत्याओं के बाद प्रशासन ने कुछ गांवों में दलितों व भूमिहीन मजदूरों को पट्टे भी बांटे। इन पट्टों को लागू करवाने के लिए पुलिस भी भेजी गई। जाहिर है कि प्रशासन ने स्वयं इस सच्चाई को समझा है कि बल का इस्तेमाल किए बिना भूमिहीनों को जमीन दिला पाना टेढ़ी खीर है । इस तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता कि पिछले कई वर्षों से उत्पीड़ित वर्ग के संगठन बल प्रयोग से भूमि का बंटवारा भूमिहीनों में करते आ रहे हैं। जमीन की जब्ती और फिर उसका आबंटन इन दोनों के पैमाने को देखते हुए, प्रशासन भी इस संदर्भ में अपनी असफलता को मानने पर बाध्य है। गया के जिलाधिकारी ने स्वीकार किया कि 'हम लोगों को उस भूमि पर अधिकार दे रहे हैं जो संगठनों द्वारा पहले ही बांटी जा चुकी है।' कुछ मामलों में सरकार द्वारा आबंटियों के नाम बदल देने से तनाव की स्थिति उत्पन्न हुई है। इस कारण से भूमिहीनों ने प्रशासन द्वारा पट्टे बांटे जाने का विरोध किया है। इन पट्टा-अधिकारों पर तय किया गया टैक्स भरने से भी उन्होंने इंकार कर दिया है। उनका कहना हैकि इस भूमि पर असल अधिकार लेने की प्रक्रिया में सरकार ने कभी उनकी मदद नहीं की ।

मजदूरी की दर व बटाईदारी में हिस्सा अन्य महत्वपुर्ण मुद्दे हैं, जिनपर संघर्ष चल रहा है। इन मुद्दों पर प्रशासन के पास कोई कार्यक्रम नहीं है। अधिकारियों का मानना है कि फसल पैदा करने वालो को उचित पारिश्रमिक मिले, इसकी व्यवस्था राज्य के कानून में की गई है। किन्तु इस व्यवस्था को लागू करने का कोई भी कारगर तरीका उन के पास नहीं है, जबकि दूसरी तरफ क्षेत्र में कार्य कर रहे मार्क्सवादी- लेनिनवादी संगठन इन्हीं कानूनों को लागू करने में सफल रहे हैं। क्षेत्र में न्यूनतम मजदूरी दर ९६.५० रू. अथवा इसके बराबर अनाज (३ किलो) है जो शायद ही किसी को दिया जाता हो। किन्तु ये संगठन अपने प्रयत्नों से ६५० ग्राम से १.२५ किलो मिलने वाली कम मजदूरी को २.५ किलो तथा एक समय के खाने तक बढ़वाने में सफल रहे हैं।

देश की कानून-व्यवस्था को लागू कराने के लिए वचनबद्ध सरकार मेहनतकशों को उनका हक दिलाने में असफल रही है, जबकि इन क्षेत्रों में काम कर रहे मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठन, जिनका इस समाज- व्यवस्था व इसके कानूनों में बहुत कम विश्वास है, व्यवहार में इन जिम्मेदारियों को निभा रहे हैं।

हैं। पहले परंपरा यह थी कि फसल कटाई के समय मजदूरों को, गट्ठर बनाते समय, अपने हिस्से के गट्ठर में अधिक धान (प्रत्येक १२ गट्ठर में एक के हिसाब से) लेने का अधिकार था। इसी को पंजा कहा जाता है। झिटकोरिया में मजदूरी बढ़ाने की लड़ाई लगभग जीती जा चुकी है। जब हमारी टीम गांव पहुंची तो विवाद पंजा के आकार को लेकर चल रहा था। क्षेत्र में मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठनों के प्रभाव का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि टीम की उपस्थिति में एक ६ एकड़ भूमि के मालिक और एक भूमिहीन दलित मजदूर के बीच इसी मुद्दे पर खुली बहस चल रही थी। दोनों पक्ष टीम को पंजा में धान की मात्रा बताने का प्रयास कर रहे थे।

क्षेत्र में जबसे मजदूरी दर बढ़ी है, कुछ इलाकों के जमींदार बटाईदारी की प्रथा को प्राथमिकता देने लगे हैं। इन गांवों में संघर्ष इस बात पर चल रहा है कि फसल में बटाईदार का हिस्सा कितना होना चाहिए। बटाईदारों की मांग है कि भूस्वामी बीज और खाद का पूरा मूल्य और सिंचाई का आधा खर्चा उठाएगा। फसल के समय दोनों को बराबर हिस्सा मिलेगा और बटाईदार को पंजा भी मिलेगा। बटाईदार, मालगुज़ारी टैक्स को अपने ऊपर थोपे जाने के प्रयास के खिलाफ भी संघर्षरत हैं। दक्षिणी गया में एम.सी.सी. के इलाकों में बटाईदारी का चलन समाप्त हो चुका है। वहां ज़मींदारों को अपनी जमीन जुतवाने के लिए कहीं भी बटाईदार नहीं मिलते। उनकी जमीनें बंजर पड़ी हैं।

खेत में काम करने वाली मजदूर औरतों की इंसान के रूप में गरिमा को लेकर क्षेत्र में कार्यरत ये विभिन्न संगठन एक लंबी लड़ाई छेड़े हुए हैं। अधिक मजदूरी के लिए हड़तालें धान की बुआई के वक्त की जाती है क्योंकि यही वह समय होता है जब मज़दूर मांगें मनवाने की बेहतर स्थिति में होते हैं। धान की बुआई का यह कार्य आम तौर पर मज़दूर औरतों द्वारा ही किया जाता है। इसलिए हड़ताल का सफल होना गांव में औरतों को संगठित करने की सामर्थ्य पर निर्भर करता है। आकोरी गांव में धान की बुआई करते समय जब कुछ मजदूर औरतें क्रांतिकारी गीत गाने लगीं तो मुखिया के आदमियों ने उन्हें थप्पड़ मारे। इसका नतीजा यह हुआ कि पूरी एक फसल के लिए उसके खेत खाली पड़े रहे। अंत में मुखिया को पूरे गांव के सामने मज़दूर औरतों से माफी मांगनी पड़ी। तब जा कर काम शुरू होने के आसार बने।

मालिकों के जुल्म के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष में औरतों की भागीदारी का एक परिणाम यह निकला है कि परिवार व समुदाय में पुरुष के शासन करने की परंपरा में भी परिवर्तन आया है। दौलतपुर में हमें बताया गया कि पत्नी को पीटने के एक किस्से को लेकर गांव भर की औरतों ने, इस घटना के विरोध के रूप में, पूरे एक दिन चूल्हा नहीं जलाया।

जहां, आज से पहले, औरतों को यौन-उत्पीड़न से मिला अपमान उनकी रोजाना की जिन्दगी का एक हिस्सा बन चुका था, वहीं आज यह उत्पीड़न आगामी लड़ाई का एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन चुका है। आज इस मुद्दे को खुले रूप से उठाया जा रहा है ताकि इस उत्पीड़न का सांझा दर्द, परिवार, समुदाय अथवा गांव की चारदीवारी से ऊपर उठकर, एक सांझी लड़ाई को जन्म दे सके। यह प्रतिरोध एक राजनीतिक क्रिया है जो सीधे मालिकों की ताकत के निरकुंश प्रयोग पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। जिला प्रशासन के वरिष्ट अधिकारियों तक का मानना है कि मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठन मालिकों को यौन-व्यभिचार बन्द करने पर मजबूर कर चुके हैं। गया के एक बड़े अधिकारी का कहना है कि एम.सी.सी. की कार्यवाहियां ने दलित औरतों के बलात्कार पर लगभग पूरी रोक लगा दी है। उनके अनुसार एम. सी.सी. ने मालिकों के दिल में ऐसा खौफ पैदा कर दिया है कि आज उनके शब्दकोष में बलात्कार की सजा केवल मौत है।

क्षेत्र में पूरे एक दशक तक संघर्ष चलाने के बाद अब ये संगठन अपने आधार को मजबूत बनाने की प्रक्रिया में लगे हैं। उदाहरणतः एम.के.एम.एम. अधिक मजदूरी और भूमि पर नियत्रंण के अलावा अब कृषि विकास से जुड़ी मांगों को भी उठा रहा है। ग्रामीण जनसंख्या का आधा हिस्सा ऐसे किसानों का है जिनके पास ५ एकड़ से कम भूमि है। कृषि उत्पादन में गतिरुद्धता के कारण ऐसे किसानों के लिए आजीविका कमाना बहुत कठिन हो गया है। इनमें से बहुत से किसानों को जातिगत बंधनों के कारण खेती के लिए मजदूरों पर निर्भर करना पड़ता है जिसके कारण इन छोटे किसानों पर बेहतर मजदूरी के लिए चल रहे संघर्ष का विपरीत असर पड़ा है। इन संघर्षों के प्रति प्रतिरोध अक्सर जातिगत रूप ले लेता है। कृषि विकास से जुड़े अभियान इन तबकों की मांगों को भी उठाते हैं। इस प्रकार जाति सीमाओं को काटते हुए संबंधों का निर्माण होता है। जातिगत विभाजन की समस्या को क्षेत्र के ये सभी संगठन आज महसूस कर रहे हैं। हाल ही में एम.के.एम.एम. ने एक संघर्ष समिति बनाई जिसने अरवल प्रखण्ड में तेनार नदी पर ६ कि.मी. लम्बे बांध बनाने का कार्य करेगी। इस बांध के निर्माण के लिए आसपास के गांवों से सामुदायिक श्रम जुटाया गया।

साक्षरता : किसे परवाह है !

जहानाबाद के डी. एम. ने अभी हाल ही में क्षेत्र के कुछ दलित टोलों में एक वैकल्पिक साक्षरता कार्यक्रम प्रारम्भ किया। दलितों के सबसे अधिक उत्पीड़ित वर्ग, मुसहरों, के बीच चल रहे इस कार्यक्रम की सफलता टीम ने स्वयं देखी जब वह इकिल के दलित टोले में गई। दलितों ने हमें बताया कि जब पहले उनके बच्चे सरकारी स्कूल में जाते थे तो वहां उनका अपमान किया जाता था। इसलिए वे स्कूल जाना छोड़ चुके थे। वैसे भी उस स्कूल में केवल वही लोग अपने बच्चों को भेजते थे जो किसी अन्य स्कूल का खर्चा नहीं उठा पाते थे क्योंकि उस स्कूल में शिक्षा जैसी कोई चीज नहीं थी।

इस कार्यक्रम के तहत चल रहे नए स्कूल को काफी सफलता मिली है और बच्चों के अलावा बहुत से वयस्क भी इसका लाभ उठा रहे हैं। टोले के लोगों ने कक्षाएं लगाने के लिए स्वयं छत डाली है। इस प्रकार टोले के ही बीच में स्थित इस स्कूल ने दलितों को आत्म- सम्मान और शक्ति की भावना दी है। वैसे डी. एम. मानते हैं कि शिक्षा के इस कार्यक्रम की कामयाबी का श्रेय, क्षेत्र में कार्यरत एम.के.एस. एस. को जाता है। एम.के.एस.एस. इस कार्यक्रम में पूरी रुचि दिखा रहा है और स्कूल चलाने के लिए अध्यापक मुहैया करा रहा है। यह विडंबना ही है कि अपने साक्षरता कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए सरकार इस संगठन की मदद ले रही है, जबकि यह संगठन सरकार द्वारा ही प्रतिबंधित किया जा चुका है।

हाल ही में आई.पी.एफ. ने चुनावी राजनीति की मुख्य धारा में प्रवेश कर जनवादी अधिकारों की लड़ाई लड़ने का फैसला किया है। १९९९ के चुनावों में पार्टी का एक प्रतिनिधि भोजपुर की आरा सीट से चुनाव जीत चुका है। मध्यम वर्गों के संख्यात्मक अनुपात को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि चुनावों में देहाती इलाकों के इन वर्गों को अपनी ओर आकर्षित करना चुनाव जीतने में निर्णायक भूमिका निभाता है — खासकर ऐसी व्यवस्था में, जहां दलितों व भूमिहीनों को चुनावी प्रक्रिया से दूर रखा जाता हो, जहां संसदीय लोकतांत्रिक प्रक्रिया के चलते उन्हें समाज के हाशिये पर जीने के लिए मजबूर किया जाता हो। आई.पी.एफ. द्वारा मताधिकार के प्रयोग के लिए संघर्ष (बूथ पर कब्जा न होने देना) का प्रयास जहां एक ओर जनता की लामबंदी के लिए बनाई गई समरनीति व लामबंदी के मुख्य केन्द्र बिंदु में आए बदलाव को दिखाता है, वहीं दूसरी ओर मध्यम तबकों के बीच टकराव की प्रवृत्ति को और तीखा करता है। गांव के स्तर पर संघर्ष के बजाए जन गोलबंदी के कार्यक्रम अब संगठन की मुख्य गतिविधि के रूप में सामने आ रहे हैं। इसका पता इस तथ्य से चलता है कि पिछले दो बरसों में हुए जनसंहारों में (जिनमें आई.पी.एफ. कार्यकर्त्ताओं की हत्याएं हुईं) मुख्य कारण चुनावी प्रक्रिया में आई. पी.एफ. द्वारा आधार तैयार करना था (तिसखोरा, देव सहरिया और एक दृष्टि से करकटबीघा)।

एम.सी.सी., जो औरंगाबाद में दलेलचक-बघौरा हत्याकांड के बाद राष्ट्रीय अखबारों की सुर्खियों में आ गया, के संगठन का तरीका आई.पी.एफ. अथवा एम.के.एम.एस. से बिलकुल भिन्न है। अभी हाल तक एम.सी.सी. का सम्पूर्ण सांगठनिक कार्य भूमिगत रूप से चलता रहा है। संगठन की गैर-कानूनी कार्यवाहियों को मीडिया तथा अन्य साधनों के द्वारा इस तरह से दर्शाया जाता रहा है कि यह तथ्य सामने नहीं आ पाया कि संगठन की लड़ाई उन अधिकारों को प्राप्त करने के लिए है, जो जनता को संविधान द्वारा मिले हैं, जैसे न्यूनतम मजदूरी, भूमि पर अधिकार व इज्जत की जिंदगी। हाल ही में एम.सी.सी. ने कुछ जन-संगठनों का निर्माण किया है — जन सुरक्षा संघर्ष मंच व क्रांतिकारी बुद्धिजीवी संगठन। १९९६ में दलेलचक, बघौरा में हुई हत्याओं को लेकर संगठन पर लगे प्रतिबंध के बाद यह पहला मौका है, जब उसने खुले रूप से जनता को संगठित करना प्रारम्भ किया है।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठनों के झंडे तले चल रही यह लामबंदी, सदियों से समाज के हाशियों पर जीने को मज़बूर, इन उत्पीड़ित होते आए वर्गों के जीवन में युगान्तकारी परिवर्तन ला चुकी है। जहानाबाद के जिला प्रशासन तक का कहना है कि अब हरिजनों के साथ मनमाना सलूक नहीं किया जा सकता। गया में प्रशासन हालांकि एम.सी.सी. को अपराधियों का गिरोह कहकर नकारता है, फिर भी उसे यह तो कबूल करना ही पड़ता है कि उन्होंने ग्रामीण अभिजातों की शक्तिशाली लॉबियों की नाक में दम कर रखा है।

इन लॉबियों और गुटों की प्रतिक्रिया का चरित्र बर्बर रहा जिसका सामान्य रूप निजी सेनाओं के बल पर आज चल रहे संगठित हमले हैं।

निजी सेनाएं

भूमिहीनों व दलितों के संगठनों के लगातार बढ़ते व मजबूत होते चले जाने के जवाब में निजी सेनाओं का जन्म बिहार राज्य की एक विशिषता है। कहा जाता है कि इन सेनाओं का जन्म लठैत रखने की उसी परंपरा से हुआ है, जो पहले देहाती क्षेत्र की सांमती ताकत को बाहुबल प्रदान करती थी। इसकी वजह कुछ भी हो, परन्तु व्यापक रूप से फैले अपराधी गिरोह, डकैतियां, छोटे किसानों के पशुओं व फसलों की रोजांना की लूट, इत्यादि, सदा से इस क्षेत्र में स्थापित शोषक सम्बन्धों को बरकरार रखने का एक कारगर तरीका रहे हैं (दो बरस पहल भागलपुर जिले में हमारे समय के सबसे भयानक दंगों में भी इन्हीं तत्वों को दोषी ठहराया गया था)। शोषित जनता के आन्दोलन को हिंसा के जरिए कुचलने के लिए निजी सेनाओं के जन्म ने इस तथ्य को नए आयाम दिए।

बिहार के इन जिलों मे ये सेनाएं पिछले १० वर्षों से काम कर रही है। जाति के नाम पर इन सेनाओं के लिए ताकत जुटाई जाती है। भूमिहारों ने सबसे पहले इस प्रकार की सेना का गठन किया। १९८० के शुरू में बनी इस सेना का नाम था ब्रह्मर्षि सेना। कुर्मी एक अन्य ऐसी जाति है जो संख्यात्मक रूप से जहानाबाद के कुछ इलाकों में काफी शक्तिशाली है। सामाजिक शक्ति हथियाने के लिए, उनमें से ऊपर उठते मालिकों ने खेत-मजदूरों की अधिक मजदूरी की मांगों का जवाब हिंसा से देने की कोशिश की। इसके परिणामस्वरूप पटना व जहानाबाद में भूमि सेना का जन्म हुआ। अस्सी के दशक के मध्य में शक्तिशाली यादवों ने भी पटना व नालन्दा में लोरिक सेना का गठन किया ।

इन निजी सेनाओं द्वारा बहुत से गरीब किसानों, मजदूरों व राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं की हत्या की गई। इनके काम करने का ढंग था — किसी गांव को घेरना, गांव में संगठन से जुड़े दलितों की हत्या कर देना व उनके घरों को आग लगा देना। इसके बाद सेना में से कुछ लोग गांव में ही ठहर जाते, उनके लिए भोजन व ठहरने की व्यवस्था की जाती, इस दौरान दलित औरतों का अपहरण और बलात्कार आम बात थी । पिछले दशक के ऐसे सबसे वीभत्स हादसों में से एक था पिपरा का जनसंहार ।

मंझोले व छोटे किसानों के आधार का कट जाना बाद में इन सेनाओं के बिखराव का मुख्य कारण बना। यही आधार इन्हें भोजन व आश्रय देता था। पहुंच से बाहर मांगों, बुरा व्यवहार व गांव की औरतों के यौन उत्पीड़न ने धीरे- धीरे इन्हें अलग-थलग कर दिया। अपनी ही जाति के गरीब लोगों के उत्पीड़न ने जाति के आधार पर खड़े बल को गिरा दिया। इसके अलावा मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठनों की दीर्घकालिक लड़ाई ने इन सेनाओं के विघटन में एक निर्णायक भूमिका निभाई।

जनता दल के सत्ता में आने के बाद इन सेनाओं व जनसंहारों की राजनीति का एक बार फिर उदय हुआ। मंडल विरोध की लहर के दौरान किसान संघ ने 'पिछड़े' यादवों व 'अगड़े' राजपूतों व भूमिहारों को गोलबन्द किया। यह वही किसान संघ है जिसने तिसखोरा जनसंहार से काफी नाम कमाया था। पटना-भोजपुर इलाके में कार्यरत इस सेना का जन्म संभवतः पालीगंज के मुखिया प्रदीप यादव के नक्सलियों द्वारा मारे जाने के बाद हुआ था। प्रदीप यादव, रामलखन का एक करीबी रिश्तेदार था। रामलखन एक ही समय में कांग्रेस (ई) का विधायक व जनता दल का संसद-सदस्य था। किसान संघ को राम लखन से राजनीतिक संरक्षण मिलता है।

किसान संघ का जन्म ५०० लोगों द्वारा मुख्य मंत्री लालूप्रसाद यादव के निवास स्थान तक एक मार्च निकालने के साथ हुआ। राज्य में नक्सलवादी गतिविधियों पर रोक लगाना इनकी मुख्य मांग थी। उसके बाद जनसंहारों का एक सिलसिला प्रारम्भ हुआ। १४ भूमिहीन किसानों को तिसखोरा (पटना) में, सात को करकटबीघा (पटना) में और १४ को देवधर और सहियार (भोजपुर) में मौत के घाट उतार दिया गया। १९९१ के चुनावों के समय से ही किसान संघ की बहुजातीय लामबंदी में तनाव के लक्षण दिखने शुरू हुए। जाति पर आधारित वोट बैंकों की राजनीति के चलते ही ऐसा हुआ। कहा जाता है कि क्षेत्र के भूमिहारों को अपने पक्ष में शामिल करने का ही एक प्रयास था — करकटबीघा जनसंहार। जुलाई १९९१ के चुनावों में जाति-प्रतिरोध के आधार पर भूमिहारों ने जनता दल व किसान संघ नेता रामलखन के खिलाफ ही मत दिया था। किसान संघ ने कुछ आर्थिक मुद्दों को भी उठाने का प्रयास किया है जैसे अनाज की बेहतर सरकारी कीमतेंऔर आगतों में आर्थिक सहायता। किन्तु सांगठनिक ढांचे के खंड़ित होने के कारण उसे इन प्रयासों में सफलता नहीं मिल पाई।

किसान संघ को देखकर, पुरानी ब्रहार्षि सेना से जुड़े

लोगों ने भी अपने खुद को स्वर्ण लिबरेशन फ्रंट (एस.एल.एफ) के नए बैनर तले संगठित किया। २१ दिसम्बर १९९० को, कांग्रेस के राज्य सभा सदस्य 'किंग' महेन्द्र द्वारा इसका औपचारिक रूप से उद्घाटन किया गया । जगदीश शर्मा व रामाश्रय सिंह संगठन से जुड़े दो अन्य कांग्रेसी विधायक हैं। इसके अलावा जो अन्य राजनीतिक हस्तियां संगठन से जुड़ी हैं उनमें मखदुमपुर (जहानाबाद) से भाजपा नेता तिलक सिंह का नाम प्रमुख है। राजनेताओं के साथ-साथ बिन्दु सिंह व कृष्णा सरदार तथा ऐसे ही बहुत से कुख्यात अपराधी भी इस सेना से जुड़े हुए हैं।

भूमिहार जाति का रामाधार सिंह एस.एल.एफ. का प्रमुख कमाण्डर है। 'डायमण्ड' के नाम से जाना जाने वाला यह व्यक्ति गया के किरानी कॉलेज में क्लर्क था। 'किंग' महेंद्र से नज़दीकी संबन्ध होने के कारण ही शायद डायमण्ड को एस.एल.एफ. में ऊंचा ओहदा प्राप्त है। किंग महेंद्र ने रामाधार सिंह के दो बेटों को बम्बई में अपनी दवाई कम्पनी में नौकरी दे रखी है। मध्य बिहार से नक्सलियों का नामो-निशान मिटा देने की कसम खाने वाले डायमण्ड का कहना है कि "मेरा इतिहास मजदूरों की चिता पर लिखा जाएगा।"

स्वर्ण लिबरेशन फ्रंट का सांगठनिक ढांचा मजबूत है। फ्रंट का सदस्य बनने के लिए एक किसान को २ किलो अनाज व एक कर्मचारी को अपने वेतन का १ प्रतिशत हिस्सा देना होता है। डायमण्ड की गिरफ्तारी के समय फ्रंट का कुछ लिखित साहित्य जब्त कर लिया गया था। यह साहित्य सेना की विचारधारा को बताता है। किन्तु डायमण्ड की गिरफ्तार करने वाले पुलिस अधिकारी ने टीम को बताया कि 'इस साहित्य में फ्रंट की विचारधारा जैसा कुछ नहीं है'। यह खुले रूप से दलितों के जनसंहार का ऐलान करता है। सावनबीघा, रामपुरचय, मेन और बरसीवां में हुए जनसंहारों में फ्रंट का ही हाथ था।

राज्य की तीसरी बड़ी निजी सेना सनलाइट सेना है, जिसने पलामू जिले में आतंक फैला रखा है। जनता-दल नेता अवधेश कुमार सिंह इसके मुख्य कर्त्ताओं में से एक हैं। तमिलनाडु के राज्यपाल भीष्म नारायण सिंह के भाई विजय सिंह द्वारा इस सेना का गठन किया गया था। सनलाइट सेना के काम करने के तरीकों से प्रभावित होकर पीपरा (दक्षिणी गया) के एक बड़े जमींदार सुबोध सिंह की पहल पर इसी नाम से एक और सेना बनाई गई। एम. सी. सी. के झण्डे तले मजदूरों व बटाईदारों की बढ़ती ताकत को कुचलने के लिए इलाके के पठान व राजपूत मालिक एक होकर सामने आए।

दलितों व भूमिहीन मजदूरों के खिलाफ बर्बर हिंसा के प्रयोग के लिए ये सभी सेनाएं जिम्मेवार हैं। नक्सलियों को मिटाने के नाम पर अथवा उनके द्वारा छेड़े गए संघर्ष को कुचलने के नाम में किए गए जनसंहार आज बिहार के देहातों में एक स्थानीय महामारी बन चुकी है।

खेतिहर तनाव और जनसंहार

करकटबीघा, थाना-पालीगंज, जिला-पटना

पटना जिले के दक्षिण-पश्चिम कोने में सोन नदी के तट पर पालीगंज प्रखंड में करकटबीघा गांव है। इसी के आसपास आकुरी, मसौढ़ा, उदयपुर, मोहम्मदपुर, महाबलीपुर और जलपुरा गांव हैं। आई.पी.एफ. और एम.के.एस.एस. इन गांवों के लोगों को संगठित करने का काम कर रही हैं। इन संगठनों ने बेहतर मजदूरी और गैर-मजरूआ जमीन को भूमिहीनों में बांटने से संबंधित मसले उठाए हैं। इन्हीं संगठनों को रोकने के लिए मालिक किसानों ने किसान संघ का गठन किया है।

इस क्षेत्र के कुछ मालिकों के पास कई-कई एकड़ जमीन है। उदाहरण के तौर पर आकुरी गांव में तीन जमींदारों के पास ६०-६० एकड़ जमीन है तथा अन्य १० परिवारों के पास ३०-३० एकड़ जमीन है। इस इलाके में जमीन को लेकर संघर्ष पिछले पांच वर्षों से शुरू हुआ है। आकुरी में करीब साढ़े सात एकड़ गैर-मजरूआ जमीन पर इन संगठनों ने कब्जा कर लिया है।

बेहतर मजदूरी के लिए संघर्ष १९८६ के अंत में शुरू हुआ। उस समय मजदूरी एक किलो चावल थी। इन संगठनों ने दो किलो चावल की मांग रखी। एक साल के बाद यह मजदूरी १.५ किलो तक पहुंची। चार साल पहले तक हरवाहे को केवल एक किलो चावल एक दिन की मजदूरी के रूप में दिया जाता था। आज वही मजदूरी एक किलो चावल के साथ खुद के बोने के लिए १२ कट्ठा (०.३७५ एकड़) जमीन हो गई है। फसल कटाई के दौरान १२ हिस्सों में से एक हिस्सा दिया जाता है।

१९८६ में, जिला प्रशासन ने एक सड़क के निर्माण की मंजूरी दी । लेकिन आकुरी के एक बड़े भूस्वामी जनार्दन प्रसाद के भाई जय प्रसाद ने सड़क का काम रुकवा दिया क्योंकि सड़क

उसके खेतों के बीच से होकर जाती थी। गांव वालों ने इसका विरोध किया तो उनको जयप्रसाद और उसके गुर्ज़ों द्वारा बुरी तरह पीटा गया। शिकायत दर्ज़ कराने के बाद सड़क का काम फिर से शुरू हुआ। किन्तु इस बार जयप्रसाद के गुण्डों ने एक गांववासी को मौत के घाट उतार दिया। विरोध में मजदूरों ने उसके खेतों पर हड़ताल कर दी। अंत में सड़क बन कर तैयार हो गई।

२४ सितम्बर १९९१ को आई.पी.एफ. ने बहादुरगंज में नक्सलियों, पुलिस और जमींदारों के बीच हुई मुठभेड़ में छह लोगों के मारे जाने के विरोध में एक रैली का आयोजन किया जो आकुरी, महाबलीपुर, उदयपुर और करकटबीघा गांवों से होकर गुज़री। जब यह विरोध रैली आकुरी से शुरू हुई तो इसमें कुल ३० लोग थे, जिनमें ८ महिलाएं भी शामिल थीं। करकटबीघा के दलित टोले के लोगों के शामिल होने के बाद ये रैली मुख्य बस्ती की ओर बढ़ी।

एक महीने पहले ही किसान संघ के रविंद्र सिंह, जो उदयपुर का एक बड़ा भूस्वामी था, को नक्सलियों ने मार डाला था। वह मसौढ़ा गांव के मुखिया और किसान संघ के नेता बीड़ी सिंह का भतीजा था। आई.पी.एफ. जब अपनी रैली को लेकर गांव-गांव घूम रही थी, ठीक उसी समय करकटबीघा में किसान संघ की बैठक चल रही थी और जमींदार लोग रवींद्र की मौत का बदला लेने की योजना बना रहे थे। जैसे ही रैली करकटबीघा पहुंची, उन्हें वहां रोक दिया गया। दोनों पक्षों में थोड़ी देर गर्मागर्मी होती रही, और जब रैली लौट रही थी तो पीछे से उनपर गोलियां बरसनी शुरू हो गईं। दो राह चलते मुसाफिर इस गोलीबारी में मारे गए। आकुरी के तीन मजदूर, मियादी मोची, परिक्षण मोची और बंजारी मोची बुरी तरह घायल हो गए। गांव के पास ही नक्सलियों के एक सशस्त्र दस्ते ने पड़ाव डाल रखा था। गोलियों की आवाज सुनकर उनमें से एक जब घटना का पता लगाने के लिए आया तो उसे भी गोली लग गई और वह घटना स्थल पर ही मारा गया। घायल व्यक्तियों ने भागने की कोशिश की परंतु उन्हें आक्रमणकारियों ने धर दबोचा और मसौढ़ा ले गए। परिक्षण मोची का भाई बूटन भी घायल हो गया था परंतु वह भागने में सफल रहा और खेतों में छिप गया। सब लोगों के वहां से चले जाने के बाद वह जैसे-तैसे सोन नदी के किनारे की पगडंडी से होकर अपने गांव जाने लगा। नदी किनारे वह एक लाश से जा टकराया। वह भागकर मसौढ़ा पहुंचा, पुलिस वहां पहुंच चुकी थी। बूटन ने पुलिस को लाश के बारे में खबर दी। पुलिस ने उसी को लाश लाने का आदेश दिया। कुछ लोग गांव से बूटन के साथ हो लिए और उन्होने नदी से नहर के रास्ते बहकर आती हुई और लाशें देखीं। ये लाशें कुछ दिन पहले अपहृत मजदूरों की थीं और उनके शरीर पर बर्बर पिटाई और यंत्रणा के निशान थे।

घटना के बाद १७ व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया। मरने वालों के परिवारों को एक लाख रूपये के मुआवजे का वादा किया गया था, अभी तक उन्हें सिर्फ २० हजार मिले हैं। मसौढ़ा की मुख्य बस्ती में स्थित स्कूल में जाहिर तौर पर दलितों की सुरक्षा के लिए पुलिस कैंप लगा दिया गया है। इसमें हैरत की बात नहीं है कि स्कूल जाने वाले १२ दलित लड़कों ने उधर का रूख करना छोड़ दिया है।

सावनबीघा, थाना शकूराबाद, जिला जहानाबाद

जहानाबाद को, मखदुमपुर और गया से जोड़ने वाली सड़क के पश्चिमी छोर पर एक छोटी सी नदी पार करते ही सावनबीघा, नारायणपुर, सिरौंधा, चैनपुर और इकिल गांव पड़ते हैं। मखदुमपुर से जीप और तांगे पाइबीघा गांव तक आते जाते रहते हैं। हज़ारीबाग और दक्षिणी गया की पहाड़ियों से होकर आई दरधा नदी गांव के दूसरे छोर से बहती है।

पाइबीघा से नदी पार कर, टूटी हुई सड़क पर अगर कुछ कोस उत्तर की तरफ जाया जाए तो सावनबीघा पहुंचा जा सकता है। इस टूट चुकी सड़क को बिहार सरकार ने नक्सलियों से निबटने के लिए बनवाया था। यही वह सावनबीघा गांव है जहां २१ सितंबर १९९१ के दिन सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के लोगों ने सात दलित मजदूरों का सरेआम कत्ल किया था। माना जाता है कि यह घटना ६ सितम्बर को एम.के.एम.एम. द्वारा बधेटा में एस. एल.एफ. की राइफलें छीने जाने की प्रतिक्रिया है। जिन सात लोगों का सावनबीघा में कत्ल किया गया, उनमें से तीन को नारायणपुर, दो को सिरौंधा, एक को चैनपुर तथा एक व्यक्ति को इकिल से उठाकर लाया गया था।

इकिल गांव सावनबीघा के उत्तर की तरफ बसा हुआ है। इस गांव में मुख्य बस्ती में करीब सौ परिवार हैं। दक्षिण में एक छोटा टोला है। इन परिवारों में कुछ को छोड़कर अधिकतर लोग जाति से भूमिहार हैं और कुल मिलाकर ७०० एकड़ जमीन के मालिक हैं। उनमें से आधे लोगों के पास डेढ़ एकड़ से कम जमीन है, सबसे बड़ी जोत ३० एकड़ की है। बाकी के पास १२.५ और १५ एकड़ के बीच जमीन है। गांव में १५० एकड़ गैर मजरूआ जमीन है जिसे गांव के बड़े भूस्वामी हथियाए हुए हैं। गांव के टोले में कुल मिलाकर ७२ दलित घर हैं और ये सभी मांझी (मूसहर) जाति के हैं।

इस गांव का मजदूरी के मसले को लेकर एक लंबा इतिहास रहा है। आई.पी.एफ. ने इस गांव के लोगों को ६ साल पहले लामबंद करना शुरू किया था। उस समय यहां मजदूरी एक सेर अनाज हुआ करती थी। १९८९ में बेहतर मजदूरी के लिए हड़ताल हुई। इस हड़ताल के बाद दिहाड़ी डेढ़ किलो अनाज और आधा किलो खाना अथवा दो किलो अनाज नियत कर दी गई। कटाई में मजदूरी १२ गट्ठों में एक गट्ठा है।

इस गांव का लगभग हर दलित, जिससे हम मिले, ने अपने पूरे जीवन किसी खास जमींदार के खेतों पर ही काम किया है। सभी का कहना था कि उनके परिवार के किसी भी सदस्य ने किसी और मालिक के यहां काम नहीं किया। अगर कोई मजदूर बीमार होने की वजह से खेत में काम के लिए नहीं आ पाता तो उसे पीटकर खेत पर जबर्दस्ती घसीट कर लाया जाता है। इन लोगों के पास आमदनी का दूसरा कोई जरिया भी नहीं है। जब फसल का मौसम नहीं होता तो ये लोग भूस्वामियों के घरों में बेगारी करते हैं। इसके लिए इन्हें भोजन के अलावा कुछ और नहीं दिया जाता। बावजूद इसके कि इस गांव में बड़ी मात्रा में गैर-मजरूआ जमीन है, यहां जमीन को लेकर किसी भी किस्म का कोई आन्दोलन नहीं हुआ। १९८९ में एक बार जब दलित, गांव के पोखर में मछलियां पकड़ने के लिए गए तो स्थानीय जमींदारों ने उन्हें घेरकर बुरी तरह पीटा। उस रोज़ से आज तक कोई भी दलित पोखर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।

२१ सितंबर को, टोले के शिवरत मांझी नामक एक दलित को दिन में खेत से काम करते हुए उठा लिया गया और सावनबीघा ले जाकर मार डाला गया। उसके परिवार में पत्नी और तीन छोटे बच्चे थे। चूंकि उसके अपहरण का कोई प्रत्यक्ष गवाह नहीं था इसलिए गांव वाले किसी को हत्या का जिम्मेदार नहीं ठहरा सके। शिवरत आई.पी.एफ. का कार्यकर्त्ता था।

स्थानीय जमींदारों की दहशत भी गवाह न होने की वजह हो सकती है। लोगों के दिलों में बैठे हुए खौफ को हमने अपनी आंखों से उस समय देखा जब हम दलितों से बात कर रहे थे। मुख्य बस्ती से एक आदमी के हमारे पास आते ही माहौल में गहरी चुप्पी छा गई।

घटना के बाद मृतक के आश्रित को नौकरी और एक लाख रुपये का मुआवजा देने का वादा किया गया। गांव के दलितों को पक्के घर बनवाने का आश्वासन भी दिया, लेकिन आज तक शिवरत के परिवार को सिर्फ ५०,००० रूपये मिले हैं। नौकरी और पक्के घरों का कहीं पर अता-पता नहीं है। भूमिहार बस्ती के एक स्कूल में एक पुलिस कैम्प लगा दिया गया है। दलितों का कहना है कि वहां तैनात सिपाही मालिकों के घर पकवान उड़ाते हैं। जब भूस्वामियों द्वारा दलितों को पीटा या प्रताड़ित किया जाता है, तो कैम्प से पुलिस वाले आते हैं और धमकी भरे अंदाज में घटना की जांच-पड़ताल करते हैं। इसके कारण दोषियों के विरुद्ध शिकायत करने की कोई कोशिश ही नहीं होती, नतीजा यह कि भूस्वामियों के खिलाफ कभी कोई कार्यवाही नहीं हुई।

टीम ने एक और ऐसे गांव का दौरा किया, जिसने सबसे ज्यादा संख्या में मौतें झेली हैं। यह था नारायणपुर। यहां मुख्य बस्ती में लगभग ७० घर हैं — ६० भूमिहारों के और १० कुर्मियों और बढ़इयों के। भूमिहार परिवारों के पास औसतन ६ एकड़ जमीन है। सबसे जयादा १३ एकड़ जमीन मिथिलेश सिंह के पास है। दूसरों के पास २ एकड़ तक जमीन है। दलित टोले में सिर्फ एक मूसहर परिवार है, बाकी सब रविदास (चमार) है।

गांव की ३.५२ एकड़ गैर-मजरूआ (खास) जमीन एक भूस्वामी लखन सिंह के कब्जे में है। लखन सिंह के पास ६ एकड़ जमीन अपनी भी है। एम.के.एस.एस. ने लाल झंडा फहराकर गैर-मजरूआ जमीन पर अपना दावा जताया है। मालिकों ने इसका विरोध किया और तब से लगातार गांव में तनाव का माहौल रहा है। एक गैर-मजरूआ (आम) जमीन के टुकड़े को दलितों को आपस में बांट लेने के लिए कहने के सिवा प्रशासन ने कुछ भी नहीं किया है।

२१ सितम्बर को एम.के.एस.एस. के गांव आए एक कार्यकर्ता को टोले के कुछ लोग जब गांव से बाहर तक छोड़कर लौट रहे थे, तो उन्हें कुछ ही दूरी पर हथियार बंद लोगों ने घेर लिया। गांव के कई लोग इस अपहरण के प्रत्यक्षदर्शी हैं। अगले दिन खबर मिली कि कैलदास (४०), मनोहरदास (३०) और रामविशुन दास (३५) सावनबीघा में मार डाले गए।

यहां भी एक लाख रूपया, पक्का मकान और वृद्धावस्था पेंशन के वादों के बावजूद मृतकों के आश्रितों को सिर्फ ५० हजार रूपये मिले। प्रशासन ने कुछ ट्रक ईंटें गिरवा दीं और लोगों से खुद ही मकान बना लेने को कहा, लेकिन उन्हें जमीन नहीं दी गई। मजे की बात यह है कि ये ईंटें विवादास्पद गैर-मजरूआ जमीन पर गिराई गई थीं। नतीजतन, दलितों को वहां जाने से रोका जा रहा है, इस बीच ज्यादातर ईंटें हटा दी गईं और बची-खुची तोड़ डाली गईं।

गवाहों द्वारा दर्ज कराई गई प्राथमिकी में अपहरण के आरोप में ९ लोगों के नाम दर्ज कराए गए, इनमें एस.एल.एफ. का कमाण्डर रामाधार सिंह डायमण्ड भी था। गिरफ्तारी से बचने के लिए सब फरार हो गए, इसलिए अदालत ने उनकी चल संपत्ति

की जब्ती के आदेश दिए। दो को छोड़कर सभी ने पुलिस के सामने समर्पण कर दिया। अब उन्हें जमानत मिल गई है। यहां तक कि रामाधार सिंह और एक अन्य को भी, जो गिरफ्तार या अदालत के सामने पेश हुए ही नहीं।

इस हत्याकांड के बाद दलितों ने मालिकों के खेतों में काम करना बंद कर दिया। इससे जल-भुनकर आसपास के गांवों के मालिक भी मजदूरों को नहीं बुला रहे। उनकी ओर से लगातार मिल रही धमकियों की वजह से दलित न गांव छोड़कर जा पाते हैं और न ही काम की तलाश में बाहर निकल पाते हैं।

नारायणपुर की मुख्य बस्ती में स्थित स्कूल में एक पुलिस कैम्प लगा दिया गया है। लेकिन इससे एस.एल.एफ. के लटैतों के गांव में आने और उनके ठहरने पर कोई रोक नहीं लगी है। वास्तव में दलितों के अनुसार, टीम के आने के कुछ दिन पहले ही मुख्य बस्ती से टोले की ओर गोलियों की बौछार की गई थी। दलित टोले के लिए हिंसा कोई नई बात नहीं है। अतीत में उन्होंने डकैतों की हिंसा का सामना किया है। बेहतर मजदूरी की मांग के समर्थन में की गई हड़तालों के दौरान उन्होंने लगातार धमकियां झेली हैं। २५ जून १९९१ को भी ३.५२ एकड़ गैर मजरूआ जमीन पर नियंत्रण के आंदोलन के समय दलित टोले पर मालिकों की गोलियों की बौछार से ५ लोग घायल हो गए। प्रशासन ने सदा के लिए अपंग हो गए एक व्यक्ति को ४,५०० रूपये का मुआवजा दिया। बाकियों को पांच-पांच सौ रुपये दिए गए। प्रशासन की ओर से विवादास्पद भूमि का मुद्दा सुलझाने की दिशा में न तो कोई पहल की गई और न ही दलितों पर ढाई जाती हिंसा पर कोई अंकुश लगाया गया।

मेन व बरसीवां, थाना बेलागंज व टेकारी, जिला गया

पाइबीघा से होते हुए दरधा नदी के साथ-साथ अगर सात किलोमीटर चलें तो मेन गांव पहुंचा जा सकता है। नदी के ठीक पार बरसीवां गांव है जो दूसरे पुलिस थाने के अधिकार क्षेत्र में आता है। २३ दिसंबर १९९१ की रात को एस.एल.एफ. ने हथियारों से लैस होकर इन दोनों गांवों के तीन दलित टोलों पर आक्रमण किया। उस रात दस लोगों की हत्या कर दी गई।

मेन गांव में एक दलित टोला है जबकि बस्ती मुख्यतः भूमिहारों की है। बरसीवां के तीन दलित टोले हैं और मुख्य बस्ती यादवों की है। बरसीवां के करीब ही केसपा गांव है — जो भूमिहारों का है और एस.एल.एफ. का मुख्य अड्डा है। फ्रंट का अगुआ सदस्य नरेश सिंह इसी गांव का रहने वाला है। इन गांवों में एम.सी.सी. और एम.के.एस.एस. गरीब किसानों और मजदूरों को कानूनी तौर पर तय की गई न्यूनतम मजदूरी की मांग को लेकर संगठित कर रहे हैं। भूमिहीनों ने १९९१ में एक हड़ताल भी की थी, जिसका उद्देश्य मज़दूरी को डेढ़ किलो से ३ किलो बढ़ाना था। यह हड़ताल तीन-चार महीने चली और अंततः मेन के भूस्वामी टोले में आए और मजदूरों को पीटा। उसी सत एक भीड़ टोले में घुसी और मजदूरों को पीटने के बाद १४ घरों में आग लगा दी गई। दूसरी सुबह इन्हीं आक्रमणकारियों में से कुछ लोग जिनमें रामाधार सिंह भी शामिल था, टोले में समझौता करने के लिए आए और अंत में मजदूरी ढाई किलो कर दी गई। बरसीवां में मजदूरों को ढाई किलो मजदूरी दी जाती है जबकि पड़ौस के ही गांव केसपा में यह अभी तक डेढ़ किलो ही है।

मेन गांव से दो दलितों — रामस्वरूप मांझी और नंदलाल — ने लूटपाट और आगजनी के खिलाफ एक रिपोर्ट दर्ज की। फसल के मौसम के दौरान इन दोनों को धमकियां दी जाती रहीं और साथ ही पैसों का लालच भी, ताकि केस वापस ले लिया जाए क्योंकि जनवरी १९९२ में इस केस की तारीख नजदीक आ रही थी। हांलाकि शिकायत में दस लोगों के नाम दर्ज करवाए गए थे परंतु पुलिस द्वारा उनके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की गई।

दिसंबर के शुरू में एम.सी.सी द्वारा चरहटा में एक सार्वजनिक सभा आयोजित की गई। देर शाम को जब सांस्कृतिक कार्यक्रम चल रहा था उसी समय कुछ भूमिहार जमींदारों ने, जो आसपास के ही गांवों के रहने वाले थे, बैठक में विघ्न डालने की कोशिश की। इसमें एक व्यक्ति घायल हो गया और बाद में जब गोलियां चलीं तो पाया गया कि दो भूमिहार मारे जा चुके थे।

२२ दिसंबर १९९१ को सशस्त्र लोगों का एक झुंड केसपा में जमा हुआ। ८ बजे के करीब इस भीड़ ने बरसीवां गांव के टोलों बरसीवां माट और परशुरामपुर को घेर लिया। हमलावर टोले में गोलियां चलाते हुए घुसे और चार लोगों को घर से बाहर खदेड़ कर मार डाला। जो लोग मारे गए, उनके नाम थे — परशुराम मांझी, शिवनाथ मोची, भून मोची और प्रजापत केदार। इसके बाद यह भीड़ करीब आधी रात को मेन की ओर रवाना हुई। वहां सभी लोग सो रहे थे। इन हमलावरों ने घरों के दरवाजे तोड़ डाले और अंदर घुस गए। कुछ लोगों को बाहर निकाला और करीब सौ मीटर की दूरी पर ले जाकर मार डाला। बंदूक की आवाज सुनकर कई लोग पहले ही भाग गए थे। यह भीड़ नंदलाल को खोज रही थी लेकिन वह उस समय टोले में नहीं था। इस गांव में छः लोगों की हत्या की गई। मरने वालों में रामस्वरूप मांझी भी था, जो पिछले आक्रमण का गवाह था। अन्य मृतकों

के नाम हैं — मुन्नी मांझी, बिनेश्वर मांझी, जानकी मांझी, दीना मांझी और दुखन मिस्त्री।

इस हमले के बाद आठ लोगों के ऊपर केस दर्ज किया गया जिनमें एस.एल.एफ. का सर्वेसर्वा रामाधार सिंह भी शामिल था। किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया जा सका क्योंकि वे सभी फरार हो गए थे। 'संपत्ति की कुर्की' के आदेश का भी कोई मतलब नहीं रह गया था क्योंकि इन सभी लोगों को इसकी पहले से ही जानकारी थी और उन्होंने वे सब चीजें वहां से हटा दी थीं, जो जब्त की जा सकती थीं। बाद में उनमें से दो व्यक्तियों को गिरफ्तार किया गया जबकि अन्य लोगो को ऐसे ही छोड़ दिया गया।

अब वहां दो पुलिस चौकियां बिठा दी गई हैं — मैन टोले में ३० पुलिस वाले और मुख्य बस्ती के मालिकों द्वारा चलाए स्कूल में ८०-९० पुलिसवाले। मरने वालों के परिवारों को एक लाख रुपए, एक पक्का घर, हैंडपंप, नौकरी और तीन महीने तक मुफ्त राशन मुआवजे के रूप में देने का वायदा किया गया था। लेकिन अभी तक सिर्फ २०,००० रुपये ही मिले हैं।

बारा, थाना टेकारी, जिला गया

बरसीवां गांव से खेतों के रास्ते बारा पांच कि.मी. दूर है। लेकिन बारा पहुंचने का आम रास्ता टेकारी से होकर जाता है जहां से एक सड़क गांव के एक किलोमीटर दूरी तक जाती है। यह गांव सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के रामाधार सिंह और उसके दाहिने हाथ हरिद्वार सिंह का जाना पहचाना अड्डा है। एम.सी.सी. के द्वारा किए गए हत्याकांड के बाद यहां पर पक्का रास्ता बनाया जा रहा है। बारा के नजदीक ही जो मजदूरों की बस्ती है, हमारे जांच दल के दौरे के दौरान वह पूरी तरह वीरान पड़ी थी।

बारा की मुख्य बस्ती में करीब ५० परिवार रहते हैं। इनमें से ४५ परिवार भूमिहारों के हैं, बाकी ब्राह्मणों के और एक परिवार तेली और दुसाध का। भूमिहारों में दस परिवार तो बेहद गरीब हैं, उनके पास जोतने के लिए मुश्किल से एक-एक एकड़ जमीन होगी। तीन परिवार दो हल इस्तेमाल में लाते हैं परन्तु अधिकतर भूमिहार परिवार एक हल से ही खेती करते हैं। इस तरह बारा बड़े जमींदारों का गांव नहीं है। गांव में अधिक से अधिक जोत १० एकड़ की है। एक नहर इस गांव में आकर ही समाप्त होती है जिसकी वजह से कुछ महीनों के लिए कुछ खेतों में पानी भर जाता है।

यद्यपि बारा में एक छोटा-सा दलित टोला है, लेकिन खेतों पर काम करने के लिए नजदीक की बड़ी दलित बस्तियों से लोग आते हैं। कुछ साल पहले तक रोज की मजदूरी केवल २ कच्चा सेर अनाज और सत्तू हुआ करती थी। मजदूरों की हड़तालों के बाद अब यह मजदूरी २ किलो अनाज और सत्तू हो गई है। टेकारी क्षेत्र में फसल की कटाई के समय हर १६ गट्ठर पर एक गट्ठर मजदूरी दी जाती है। कोंच थाना इलाके में अधिक मजदूरी की वजह से यहां लगातार तनाव बना हुआ है। यहां पर बटाईदारी आम है जिसमें अनाज का आधा हिस्सा मालिक लेता है और बटाईदार सभी आगतों का खर्च देता है। किन्तु जिन लोगों से हमने बातचीत की, उनका मानना था कि 'आर्थिक लड़ाई पीछे है और सामाजिक लड़ाई आगे है'। हमारे जांच दल ने पाया कि दलित टोले में गिरफ्तारी के डर से वीरानी छाई हुई थी।

परिवार के भीतर बंटवारों के कारण जोत का आकार पहले से कम हो गया है। इस तरह बारा में कोई भी बड़ा जोत नहीं बचा है। इसके बावजूद भी ऊंची जाति के लोगों का दलितों के प्रति रवैया नहीं बदला है। एस.एल.एफ. के आगमन तथा केसपा के नवल सिंह द्वारा इसके संरक्षण से बारा के मालिकों की शोषक गतिविधियां और अधिक मजबूत हुई हैं।

१२ फरवरी १९९२ को रात करीब ९ बजे एक भीड़ ने गांव को घेर लिया। उन्हें संदेह था कि एस.एल.एफ. के दो कमांडर गांव में मौजूद हैं। गांव वालों के अनुमान के अनुसार इस भीड़ में करीब दो हजार लोग थे। लेकिन जिला प्रशासन के अनुसार यह भीड़ करीब ४-५ सौ लोगों की थी। गोलियां चलने की आवाज के साथ भीड़ ने गांव में प्रवेश किया और दोनों कमांडरों को सौंप देने के लिए कहा। जिस किसी ने इंकार किया, उसे खदेड़ कर बाहर निकाला गया और एक घर का दरवाजा खोलने के लिए डाइनामाइट तक का इस्तेमाल किया गया। कुछ गांववालों के अनुसार आक्रमणकारी नजदीक की बस्तियों से आए थे क्योंकि वे बारा के लोगों तथा घरों को पहचानते थे। भीड़ के लोग एम.सी.सी. जिन्दाबाद और कुछ ऐसे नारे लगा रहे थे कि वे मैन और बरसीवां हत्याकांड का बदला ले रहे हैं। बाद में एम.सी.सी. ने इस हत्याकांड की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली।

कई लोगों को बस्ती के सिरे पर ले जाया गया, जहां ५० लोगों को चुनकर उनके हाथ उनकी पीठ से बांध दिए गए। उसके बाद उन्हे नहर पर ले जाया गया। वहां कुछ लोगों ने कहा कि वे भूमिहार नहीं हैं, तो उन्हें छोड़ दिया गया। एक आदमी किसी तरह से अपने आपको बचाने में सफल हुआ और वह पोखर में कूदकर भाग निकला। बाकियों की गर्दनें दरातियों से काट डाली गईं। इस हत्याकांड के तुरंत बाद पुलिस घटनास्थल पर पहुंच गई

और घायल लोगों को अस्पताल पहुंचाया। पांच लोग ही किसी तरह बच पाए। सारे मृतक ९६ परिवारों से हैं जो गांव की पूर्वी तरफ रहते थे।

मृतकों के परिवारों ने हमारे जांच दल को बताया कि उनकी एक मात्र मांग यही है कि सी.बी.आई. इस केस की छानबीन करे। उनका मानना था कि उनकी ही जाति के कुछ लोग दुश्मनों के साथ मिले हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बारा में भूमिहारों के बीच ही अंतरविरोध है। एक तबका एस.एल.एफ. के नेता नवल सिंह से नजदीकी रूप से जुड़ा हुआ है। सम्भवतः इसी गुट के लोगों को निशाना बनाया गया है।

मृतकों के परिवारों को एक लाख रूपए का मुआवजा दिया गया है। गांव के भीतर, एक मृतक के घर में, पुलिस कैम्प बिठा दिया गया है। बारा के निवासियों ने एक एफ.आई.आर. दर्ज करवाई जिसमें ३३ लोगों के नाम थे। कुल मिलाकर, आसपास की मज़दूर बस्तियों से १५५ लोगों को गिरफ्तार किया गया। इनमें से केवल ५-१० लोगों के ही नाम एफ.आई.आर. में हैं।

हत्याकांड के बाद मजदूरों ने ऊंची मजदूरी के आश्वासन के बावजूद मृतकों में से कुछ धनी भूस्वामियों के खेतों पर काम करने से इंकार कर दिया। इससे गांव में तनाव का माहौल बन गया है।

तीनडीहा, थाना डुमरिया, जिला गया

गया जिले का दक्षिणी-पश्चिमी किनारा पलामू, हज़ारीबाग व औरंगाबाद जिलों से सटा हुआ है। इस पहाड़ी क्षेत्र की चट्टानी भूमि को आंशिक रूप से जंगलों ने ढक रखा है। सिंचाई के नाम पर मात्र कुछ पारंपरिक स्रोत जैसे पोखर व आहर ही उपलब्ध हैं। यहां साल में केवल एक फसल पैदा होती है और वह भी पूरी तरह से मानसून पर निर्भर है।

तीनडीहा व नारायणपुर गांवों के आसपास के क्षेत्र में अधिकतर भूमि का स्वामित्व व नियंत्रण कुछेक परिवारों के पास है। उदाहरण के लिए नन्हे खान (मुखिया मकसूद अहमद खान) की भूमि आसपास के ६ गांवों में फैली हुई है जिनमें से तीन गांवों का तो वह सबसे बड़ा जमींदार है।

जमींदार स्वयं ४ एकड़ से अधिक भूमि पर खेती नहीं करते इसलिए बाकि की जमीन बटाई पर दे दी जाती है। क्षेत्र की भूमि उत्पादकता इतनी कम है कि फसल को आधा बांटकर बटाईदार परिवारों का गुजर सम्भव नहीं है। इन जमींदारों की सारी भूमि पर खेती कभी नहीं की जाती और इसका एक बड़ा भाग सदैव खाली पड़ा रहता है। मजदूरों की दशा यहां भी बहुत दयनीय है। मजदूरी दर २ कच्चा सेर (१.३ किलो) धान है। इस शोषण का सम्बंध जहां एक ओर जमीन मालिकों की पारंपरिक शक्ति से है वहीं दूसरी ओर मजदूरों व बटाईदारों पर साल दर साल चढ़ते आए कर्ज से है। १०० रु. के ऋण के पीछे ब्याज १० रू. प्रति महीना है। जो कि २१४ प्रतिशत सालाना बैठती है।

खेती के अलावा जंगलों से मिलने वाली वन-उत्पाद जैसे लाख, कत्था, गोंद व महुआ जीविका चलाने के अन्य साधन हैं। क्षेत्र में महुआ पर पूरी तरह से जमींदारों का नियंत्रण है। पूरे इलाके में कहीं पर भी गांव वाले महुआ एकत्र नहीं कर सकते। ऐसा करने पर उन्हें जमींदारों की मार का सामना करना पड़ता है। अन्य वन-उत्पादों पर वन कर्मियों का नियंत्रण है वह इन्हें एकत्र करने के लिए गांववालों को रिश्वत देनी पड़ती है।

इलाके के भूस्वामी पठान व राजपूत जातियों से हैं। पठान, हिन्दु जाति व्यवस्था में अपने आप को राजपूतों के नजदीक मानते हैं। कुछ का तर्क है कि पठान असल में राजपूत ही है जिन्होंने किसी समय में इस्लाम धर्म अपना लिया।

ऐसी व्यवस्था के चलते एम.सी.सी. ने क्षेत्र के किसानों व मजदूरों के बीच अपना कार्य प्रारम्भ किया। यह स्वाभाविक ही है कि संगठन द्वारा उठाए गए मुद्दों में से मुख्य हैं – जमींदारों द्वारा उत्पीड़न, भूमि का पुनः आबटंन, न्यूनतम मजदूरी व वन-उत्पाद पर नियंत्रण। मजदूरी को लेकर संगठन द्वारा एक हड़ताल की अपील की गई। कुर्मी, यादव , कोइरी जातियों के छोटे भूस्वामियों ने ३ किलो अनाज की मजदूरी को स्वीकारा। किन्तु जमींदारों ने मजदूरी बढ़ाने से इन्कार कर दिया। संगठन ने बटाई प्रथा को समाप्त करने का भी ऐलान किया है। उसके अनुसार कोई भी जमींदार उतनी ही जमीन अपने पास रख सकता है जिस पर वह स्वयं खेती कर सकता हो। बाकी भूमि गांववालों में बांट दी जाएगी। इसका कड़ा प्रतिरोध हुआ है। संगठन ने सभी बटाईदारों से अपील की है कि वे बटाई पर भूमि जोतना बन्द कर दें। इन सब घटनाओं से घबराकर, पहले से ही सशस्त्र जमींदारों ने अब और हथियार एकत्र करने शुरू कर दिये तथा एक निजी सेना (सनलाइट सेना) का निर्माण कर लिया है।

किसान संगठनों की हिंसात्मक प्रतिक्रिया बलात्कार के मुद्दे को लेकर प्रारम्भ हुई। दिसम्बर १९९० में शकील खान व शम्भू खान, दलित टोले की कुछ औरतों के साथ हुए बलात्कार में शामिल थे व तभी से गायब थे। परिणामस्वरूप नक्सलियों ने उनकी फसल काट दी और उनके बाप, मुज्जबिल खान, का अपहरण कर लिया। शकील खान ने वापिस आने पर दूसरे

जमींदारों के साथ मिलकर ५०० हथियाबंद लोगों का जुलूस निकाला।

जनवरी १९९१ से एम.सी.सी. ने बटाईदारों के बीच इस बात को लेकर अभियान छेड़ा कि वे बटाई पर भूमि जोतने से इंकार कर दें। तब से जमींदारों व उनके गुण्डों द्वारा ऐसे किसी भी व्यक्ति पर हमला होने लगा जिसपर संगठन से सम्बंध रखने का थोड़ा सा भी शक हो।

रामदोहर में सहकारी बैंक के सचिव को बीच दोपहर नारायणपुर बाजार में पीटा गया और अपहरण कर उसे छोटे खान के घर लाया गया। १४ जनवरी १९९१ को नारायणपुर का एक निवासी, परमेश्वर साहू, अपनी दुकान में बेचने के लिए सामान लेकर जा रहा था। रास्ते में उसे सनलाइट सेना ने मार डाला। मार्च के महीने में गणेश महतो का सनलाइट सेना द्वारा अपहरण किया गया जब वह घर लौट रहा था। उसका आज तक कुछ पता नहीं है। इसके कुछ दिन बाद एक डाक्टर देवनंदन अपने मित्र सहित मोटर साइकल पर आ रहे थे जब उन दोनों को सनलाइट सेना द्वारा कत्ल कर दिया गया। नंदई गांव के एक दर्ज़ी, किशोरी, को भी उसी दिन मार डाला गया जब वह बैंक से पैसा लेकर लौट रहा था। एक महीने बाद एक अफवाह उड़ी कि छोटे खान पर गोली चली। छोटे खान के बेटे और चार जमींदारों सहित पुलिस जमादार बैजनाथ प्रसाद गुप्त, नारायणपुर गांव के लाला सिंह और उनके बेटे विजय को बुरी तरह पीटते हुए ले गए। पुलिसकर्मी के खिलाफ आज तक कोई कार्यवाई नहीं हुई है और वह आज भी इसी इलाके में है। अन्य जमींदारों सहित छोटे खान, तीनडीहा गांव में हुई सात हत्याओं के मामले में अभियुक्त हैं। ये कुछ घटनाएं सनलाईट सेना की हिंसा व बर्बरता की एक झलक मात्र हैं क्योंकि यह घटनाएं केवल एक गांव व उसके आसपास के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं।

तीनडाहा एक बहुत ही छोटा गांव है। गांव में केवल तीन कोइरी परिवारों का वास है। आसपास कोई और आबादी न होने के कारण, गांव को टोले की संज्ञा नहीं दी जा सकती। गांव में बसे, मात्र तीन परिवारों के बड़ों का नाम था — सहदेव महतो (६०) जानकी महतो (५५) और मानकी महतो (५०)। तीनों भाइयों के पास कुल मिलाकर ३.५ एकड़ भूमि थी। लगभग एक दशक पहले, इमामगंज में अपनी भूमि बेचकर, ये परिवार यहां आ बसे थे। इन परिवारों ने जगंल साफ करे, यहां की भूमि को खेती योग्य बनाया। सिंचाई की कोई व्यवस्था न होने के कारण, इन्होंने खेतों में पानी देने के लिए आहरों का भी निर्माण किया।

इस जमीन के अलावा, आसपास की सारी जमीन पर पांच पठान परिवारों का स्वामित्व है। प्रत्येक के पास ५०० एकड़ से अधिक जमीन है। इन पठान परिवारों के मालिकाना हकों का अन्दाजा लगाना कठिन है क्योंकि इनकी जमीन बहुत से गांवों में फैली हुई है। । तीनडीहा के परिवार अपनी जमीन पर खेती करने के साथ-साथ इन खान जमींदारों की भूमि को भी बटाई पर जोतते थे। असल में हर जमींदार अपने पास जमीन की अधिकता होने के कारण, छोटे किसानों को अपनी अधिक से अधिक जमीन जुतवाने के लिए मजबूर करता है। इस बरस के प्रारम्भ में ही किसान संगठन यह अपील कर चुके थे कि किसानों को बटाई पर जमीन जोतने से साफ इंकार कर देना चाहिए। बटाईदारों द्वारा हड़ताल शुरू हो चुकी थी। तीनडीहा में हुई नृशंस हत्याओं की इसी संदर्भ में देखा जा सकता है। ३० सितम्बर की सुबह तीनडीहा के इर्द-गिर्द की भूमि के जमींदार गांव पहुंचे और तीनों भाइयों को आने वाली ऋतु में उनके खेत जोतने को कहा। तीनों के मना करने पर उन्हें डराया-धमकाया गया। उसी रात जमींदारों के सशस्त्र गुण्डों ने गांव पहुंचकर तीनों परिवारों के उस वक्त मौजूद सातों पुरुष सदस्यों को उनके घरों से बाहर निकाला। इनमें तीन भाइयों के अलावा उपेंद्र (२१) उमेश (१६), अर्जुन (१५) व सतेंद्र (१५) शामिल थे। कुछ दूरी पर ले जाकर उनके हाथों को कमर के पीछे बांध दिया गया और उनकी हत्या कर दी गई। इसके बाद गांव जाकर, हत्यारों ने ही यह खबर औरतों को सुनाई।

अगली सुबह गांव की औरतों ने नारायणपुर के कोइरीडीह टोले में शरण ली। गांव के लोगों ने पुलिस को सूचना दी और लाशें खोजने चले। तीन शव अहार के पास पड़े मिले और बाकी चार शव पास ही के पोखर पर। छोटे खान के घर के दरवाजे पर तैनात पुलिस ने लाशों को खोजने तक में मदद नहीं की। डी.एम. व मुख्य मंत्री ने गांव को दौरा करने की रस्म-अदायगी करते हुए प्रत्येक हत्या पर १ लाख रु. का मुआवजा देने का वायदा किया। घर की बच्चियों के ब्याह के लिए ५०,००० रु. का मुआवजा देना भी तय हुआ। इसके अलावा नौकरी, पक्के मकान व उनके गांव के विकास जैसे बातें भी की गईं। टीम द्वारा गांव का दौरा करने तक प्रत्येक हत्या के लिए २०,००० रु तथा दाह-संस्कार के लिए ५०० रु. दिए गए। गांव के शेष बचे सदस्य अभी तक तीनडीहा वापिस नहीं लौटे थे और कोइरीडीह टोले में ही शरण पाए हुए थे। नन्हे खान को बाद में गिरफ्तार कर लिया गया और सात अन्य अभियुक्तों ने पुलिस को आत्म-समर्पण कर दिया इनमें दो अभियुक्त जमानत पर छुट चुके हैं।

पिछले एक वर्ष के मुख्य जनसंहारों के केन्द्र रहे गावों को जो वर्णन ऊपर दिया गया है उससे एक तरफ किसान मजदूर संगठनों का सामाजिक आधार व दुसरी तरफ निजी सेनाओं से जुड़े लोगों का सामाजिक आधार स्पष्ट हो जाता है। भूमि स्वामित्व के ढांचे और जाति के आधार पर उत्पीड़न के चलते हितों के टकराव से तनाव पैदा होना सवभातिक ही है। और उतना ही सवाभाविक है इस तनाव का हिंसा में बदल जाना। बारा में हुई हत्याएं दलितों व गरीबों के संगठनों द्वारा बड़े पैमाने पर प्रतिशोध का एक उदाहरण है। बारा के जमींदारों का सदैव अत्याचारी रवैया व एस.एल.एफ. से उनके सीधे संबन्ध, और सावबीधा, रामपुरचई, मेन व बरसीवां के जनसंहारों के लिए जिम्मेवार एस.एल.एफ. के सदस्यों को सजा दिलवाने में सरकार की नाकामी ही इस घटना की पृष्ठभूमि है। जहां अंधेर का राज और जुर्म की राजनीति यथापूर्व स्थिति कायम रखती हैं वहां भूमिहीन मजदूरों और दलितों द्वारा ऐसी घटनाओं को मिली सामाजिक स्वीकृति को अनदेखा नहीं किया जा सकता। फिर भी इन हत्याओं को जायज नहीं ठहराया जा सकता। दलितों की हत्या के जवाब में बड़े पैमाने पर हत्याएं करने के मतलब काफी गम्भीर हैं, खासकर जब हत्याकांड के पीछे ऐसे संगठन का हाथ हो जो अत्याचारी समाज-व्यवस्था के खिलाफ संघर्षरत् है। उतना ही गम्भीर यह तथ्य है कि एस.एल.एफ. के विरूद्ध कार्यवाही, 'डायमण्ड' की गिरफ्तारी, तथा भूमि-आबंटन कार्यक्रम शुरू करने के लिए बारा जैसी घटना की जरूरत पड़ी।

बिहार जैसे सन्दर्भ में, जनतंत्र व कानून-व्यवस्था की स्थापना में सबसे निर्णायक यह बात है कि सरकार क्षेत्र में चल रहे ऐसे संघर्ष में किस ढंग से हस्तक्षेप करती है। बारा की घटना को देखकर यह साफ है कि सरकार केवल तभी कोई सुधारात्मक कदम उठाएगी जब पानी सर से निकल चुका हो। सरकार का यह रवैया समाज में दबी-कुचली जनता में एक ऐसी समझ को जन्म और वैधता देता है कि जवाबी हत्याएं ही उत्पीड़न के खिलाफ लड़ने का तरीका हैं।

गरीबों का संघर्ष और राज्य सत्ता

पटना, जहानाबाद और गया के देहातों में जुल्म का नंगा नाच करने वालों की हैसियत सिर्फ उनकी स्थानीय दादागिरी – रोजगार की नियंत्रणकारी शक्ति, जातीय बंधनों पर टिकी सामूहिक पहचान और सामंती मानसिकता, पर ही नहीं, बल्कि राज्य तक उनकी पहुंच पर भी टिकी है। मेहनतकश आवाम पर दमन करने वाले शक्ति के तीनों रूपों के गठजोड़ से अपनी हैसियत बनाते हैं: आर्थिक, सामाजिक और बाहुबल। इन तीनों में सामाजिक शक्ति सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके बल पर वे गांवों में न सिर्फ अपने जैसे विचार वाले लोगों को लामबंद कर पाते हैं बल्कि सत्ता के गलियारों तक भी पहुंच बना लेते हैं। राज्य सत्ता को अपने अनुकूल बनाने और अपने हितों में राज्य-मशीनरी का इस्तेमाल करने की क्षमताओं के कारण ये तबके सामाजिक उत्पीड़न की नींव को मज़बूत बनाते हैं।

बहस का मुद्दा हो सकता है कि आधुनिक राज्य-सत्ता के विभिन्न सस्थानों – पुलिस, विधायिका, अदालतें और नौकरशाही – के अनोखे समूह ने ग्रामीण अभिजात हुकूमत की ताकत उन इलाकों से खत्म कर दी है जहां वे पहले राज करते थे। उस स्थिति में, जहां ग्रामीण अभिजात और राज्य-मशीनरी के बीच एक निश्चित संतुलन की स्थिति हुआ करती थी, अब आधुनिक राज्य की जरूरतों के अनुरूप दोनों के बीच एक खास किस्म का तनाव पैदा हुआ है। परन्तु समकालीन भारत के ग्रामीण अभिजात समुदाय ने जाति, रिश्तेदारी और तुष्टिकरण के जरिये राजनीतिज्ञों, स्थानीय अफसरों और पुलिस, दूसरे शब्दों में जिला और प्रांतीय स्तरों पर राज्य-सत्ता के औज़ारों से फायदेमंद संपर्कों के ऐसे जाल बुने, ताकि स्थानीय जनता पर उनका दबदबा बरकार रहे। इस प्रकार ग्रामीण अभिजातों की सामाजिक सत्ता सिर्फ एक गांव या केवल अपने पड़ोस तक ही सीमित नहीं है। सामाजिक शक्ति के प्रदर्शन की पहली शर्त यह है कि किस प्रकार शरारती तत्व गरीब ग्रामीणों पर कहर ढाते हुए राज्य की मशीनरी का इस्तेमाल अपने नितांत निजी हितों के लिए करते हैं। बाहुबल शक्ति का इस्तेमाल इस दबदबे को बनाए रखने की प्रक्रिया से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

गांवों में होने वाली हिंसक घटनाओं को रोकने से संबंधित प्रशासनिक उपायों से राज्य का भेदभाव मूलक रवैया साफ दिखता है। हिंसक घटनाओं के पीड़ित परिवारों को मुआवजा देने की प्रक्रिया में प्रशासन की भूमिका निष्पक्ष नहीं रही है। ऐसे सभी मामलों में घोषित मुआवजा/राहत राशि एक लाख रूपया रखी गईहै, लेकिन गरीबों के परिवारों को महज

२०-२० हज़ार दिए गए हैं (सावनबीघा को छोड़कर, जहां मुआवजे के तौर पर ५० हजार की रकम दी गई)। लेकिन बारा में सारा पैसा दे दिया गया, कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी सहित विभिन्न राजनीतिक दलों ने धन दिया सो अलग। जाहिर है कि जैसे गरीबों के जीवन की कद्र नहीं है, वैसे ही उनकी मौत भी सस्ती है।

जहां तक कानून-व्यवस्था बनाए रखने का प्रश्न है, जिला-प्रशासन का दावा है कि बारा में हत्याओं के बाद उसने स्वर्ण लिबरेशन फ्रंट द्वारा कोई बदले की कार्यवाई नहीं होने दी, लेकिन इस घटना के पहले के अपने रिकार्ड पर वह चुप्पी साध लेता है। जिला-प्रशासन कई तरह की कार्यवाईयां करने का अधिकार रखता है, मसलन, गांवों में पुलिस चौकियां तैनात करना, हिंसा में शरीक व्यक्तियों की गिरफ्तारी, फरार हुए अभियुक्तों की सम्पत्ति की कुर्की-जब्ती, बंदूक लाइसेंसों पर नियंत्रण और अपेक्षाकृत सख्त कानूनों के तहत कार्यवाई।

जहानाबाद में १३ पुलिस स्टेशन, ७ बाहरी नाके और ४३ चौकियां हैं तथा गया में ३० पुलिस स्टेशन और ६४ चौकियां हैं। ज्यादातर चौकियां गावों में हैं और इनमें से अधिसंख्य बड़ी घटनाओं के बाद बिठाई गई हैं। लेकिन हर तबका इन्हें समान नज़रिये से नहीं देखता है। ताकतवर चाहते है कि चौकियां उनके गांवों में बिठाई जाएं और इसके लिए वे प्रशासन पर दबाव भी डालते है। उदाहरण के लिए, छतियाना में महेंद्र सिंह और उमता के तिलक सिंह की सुरक्षा के लिए चौकियां तैनात की गई, ये दोनों सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के सदस्य हैं। जब प्रशासन ने ऐसी एक चौकी को पास के दलित टोले में स्थानांतरित करने का फैसला किया, तो तिलक सिंह इस तर्क के साथ अदालत में चला गया कि प्रशासन उसकी हत्या करने की कोशिश कर रहा है। इसके अलावा चौकियों को उनके मूल स्थानों पर रहने देने के लिए एस. पी. पर पहले ही अनौपचारिक दबाव डाला जा चुका था। इन परिस्थितियों में दलितों का यह महसूस करना स्वाभाविक हैं कि पुलिस सिर्फ सामंतों की रक्षा के लिए है । पी.यू.डी.आर. टीम ने जिन गांवों का दौरा किया, सभी में पुलिस चौकियां या तो मालिकों के घर बिठाई गई थी या मुख्य बस्ती के स्कूलों में। सावनबीघा के पास इकिल और नारायणपूर में ये चौकियां स्कूलों में थीं। इसके बावजूद मालिकों की ओर से नारायणपुर पर हमले होते रहे। मेन में हत्याकांड के अभियुक्त सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के सदस्यों द्वारा चलाए जा रहे स्कूल में चौकी बिठाई गई हैं। बारा में एक भुमिहार के घर में चौकी है। तीनडीहा से सटी, एक चौकी सनलाइट सेना के नेता छोटे खान के घर द्वार पर बिठाई गई है। छोटे खान हत्याओं के मामले में अभियुक्त हैं।

जहानाबाद में प्रशासन ने यह बात मानी कि बहुत सारी पुलिस चौकियां केवल मालिकों को सुरक्षा प्रदान कर रही हैं। पर उनका तर्क है कि मजदूरों के टोलों में इन चौकियों को स्थापित करना इसलिए संभव नहीं है क्योंकि वहां हथियार सुरक्षित नहीं हैं। इसके अलावा, प्रशासन के लोगों का यह भी कहना है कि, 'पुलिस को आराम और सुविधा पसंद हैं और ये उन्ही के घरों पर मिल सकती हैं, जो इन्हें मुहैया करा सकते हैं'। इन्हीं से इस दिलचस्प तथ्य का भी पता चला कि बिहार सैन्य पुलिस की चार बटालियनों में से 'दो जातिगत पुर्वाग्रहों से ग्रस्त' हैं।

हिंसक घटनाओं के बाद गिरफ्तारियों के ढंग से भी प्रशासनिक पूर्वाग्रहों का प्रमाण मिलता है। सावनबीघा में सवर्ण लिबरेशन फ्रंट द्वारा सात व्यक्तियों की हत्या के बाद फ्रंट के तीन समर्थक गिरफ्तार किए गए। मेन और बरसिवां में फ्रंट द्वारा दस व्यक्तियों की हत्या के बाद जमींदार पक्ष के सिर्फ दो व्यक्ति गिरफ्तार हुए। दूसरी तरफ मखदुमपुर में फ्रंट के एक नेता आदित्य शर्मा के भाई की हत्या के बाद पुलिस ने ३३ दलितों को गिरफ्तार किया, और बारा में ११६ महेनतकश गिरफ्तार किए गए।

ग्रामीण संघर्षों में यदि दोनों पक्षों की गिरफ्तारियां हो भी जाएं तो संबद्ध पक्षों के साथ व्यवहार से प्रशासन की कलई खुलती है। मिसाल के तौर पर, जब सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के रामाधार सिंह डायमण्ड और बिंदू सिंह हत्या के आरोप में गिरफ्तार कर जेल लाए गए, तो उनमें से एक के कहने पर पूरा गया जेल नाच रहा था और उसे पत्रकारों से मिलने की अनुमति दे दी गई, और दूसरे को, जब जी चाहे, पुलिस संरक्षण में अपने गांव जाने की सुविधा उपलब्ध थी। दूसरी ओर, इंडियन पीपुल्स फ्रंट के दो कार्यकर्ता द्वारिका ठाकुर और जयराम पुलिस हिरासत में यातना के कारण मौत की नींद सो गए।

लेकिन प्राथमिकी में दर्ज गए सभी व्यक्ति गिरफ्तार नहीं होते। जहां अभियुक्त फरार हो जाता है, पुलिस उसकी संपत्ति जब्त करने का आदेश लेने के लिए अदालत में जाती है। यदि किसी मामले का अभियुक्त दलित हो, और वह फरार हो जाए, तो टोला का टोला तहस-नहस कर दिया जाता है, घर गिरा दिए जाते हैं, घरों का सामान लूट लिया जाता है, जो कोई भी दिखाई पड़े, उसकी बर्बरतापूर्वक पिटाई की जाती है, और यदि पुरुषों को गिरफ्तार कर थाने में रखा जाता है, तो वहां उनकी लगातार पिटाई होती है। जहानाबाद में परसोना, झिटकोरिया और धरनई जैसे गांव ऐसी घटनाओं के उदाहरण हैं। पर यह विडम्बना ही है कि कानून का पालन सचमुच मानवीय हो उठता है जब एक

एक पुलिस रेड की कहानी

करमचीबीघा, अरवल थाना, जिला जहानाबाद

१६ फरवरी की रात करमचीबीघा में मजदूर किसान संग्राम समिति (एम.के.एस.एस.) के कार्यकर्ताओं की बैठक चल रही है। उसी समय स्थानीय पुलिस का जॉन टिरकी नामक जमादार तीन सिपाहियों के साथ गांव में दाखिल होता है और बैठक में विघ्न डालने का प्रयास करता है। दोनो पक्षों में झड़प शुरू हो जाती है जिसमें जॉन टिरकी और एक सिपाही को गोलियां लगती हैं, टिरकी घटनास्थल पर ही मारा जाता है। एक लम्बे समय से जॉन टिरकी संगठन के बारे में जानकारी बटोरने के लिए गांव वालों को तंग करता आ रहा था। इस काम को वह खुफिया ढंग से, भेष बदलकर भी किया करता था।

दूसरी सुबह, पुलिस का एक बड़ा जत्था महंदिया, अरवल और करपी पुलिस थानों से ४-५ जीपों में भरकर गांव में आता है। गांव में रहने वाले सात एम.के.एस.एस. कार्यकर्ताओं व एक आई.पी.एफ. कार्यकर्त्ता, जयराम के घरों को तोड़कर पैसों व गहनों को लूट लिया जाता है। श्यामबली के भाग जाने की वजह से उसके हिस्से की यातना उसकी पत्नी और उसकी बेटी श्रीनेता को भुगतनी पड़ती है। इन दोनों को घसीट कर घर से बाहर निकाला जाता है और इन पर गालियों की बौछारें करते हुए जीप में डाल दिया जाता है। जीप में जब श्रीनेता पुलिस की बदतमीजियों का विरोध करती है तो पुलिस वाले उसे बुरी तरह पीटते हैं। इसके बाद दोनों को महंदिया थाने लाया जाता है।

आई.पी.एफ. के कार्यकर्ता, जयराम को भी पुलिस ने उसी दिन उठा लिया था। जयराम की गिरफ्तारी के वक्त श्रीनेता और उसकी मां की मौजूदगी पुलिस द्वारा उसकी बेरहम पिटाई का सबूत है। पुलिस द्वारा 'सच उगलवाने' के कर्मकाण्ड के दौरान भी मां और बेटी के साथ वहशी सुलूक किया गया। दोनों के ब्लाउज़ फाड़कर उन्हें नंगा किया गया और श्रीनेता के गुप्तांगों में पिसी हुई मिर्चें डाली गईं। इस समूची 'रेड' के दौरान कुल मिलाकर अठारह लोगों को गिरफ्तार करके ले जाया गया। इन सभी के घरों को तोड़-फोड़ कर कीमती सामान लूट लिया गया। सबसे अधिक नुकसान सुशीला हरवाहिन का हुआ जिसके घर की छत तक को तोड़ दिया गया। कहा नहीं जा सकता कि पुलिस को यह बात भूली या याद रही कि १६ वीं तारीख की रात को सुशीला हरवाहिन ने एक हवलदार की मरहम पट्टी की थी। उसके इस परोपकार के लिए पुलिस ने तोहफे के रूप में उसके हाथ में उसकी के घर की टूटी हुई छत थमा दी और पति को गिरफ्तार कर के ले गई। एक ७० वर्षीय बुढ़ी, हकमत ने हमें शादी की साड़ियों की दुर्दशा और गहनों के खाली संदूक दिखाए। इस औरत के भतीजे को भी पुलिस गिरफ्तार कर के ले गई थी ।

दूसरे दिन जयराम की लाश पाई गई, पुलिस ने लाश को परिवार को वापस तक नहीं सौंपा। आज तक लूट, यंत्रणा और हत्या के जिम्मेवार पुलिस वालों के खिलाफ कोई कार्यवाई नहीं की गई है। इस क्षेत्र के डी. एम. के अनुसार मजिस्ट्रेट द्वारा जांच का काम 'बदस्तूर' जारी है।

गांववासियों के साथ हमने बातचीत की, की उनके अनुसार एम. के.एस.एस. बैठक में विघ्न डालने के लिए पुलिस को खबर देने वाला व्यक्ति एक स्थानीय मालिक, भैरों सिंह था। पुलिस का भैरों सिह का घर मुख्य बस्ती से कुछ फासले पर है, उसके पास ५० एकड़ जमीन है जिसमें से १६ एकड़ गैर मजरूआ है। वालेदाद में उसकी एक इमारती लकड़ी और कोयले की दुकान भी चलती है। पूरे गांव में केवल पांच ऐसे घर है जिनके पास छह एकड़ से ऊपर जमीन है, अन्य बीस घरों के पास ३ से ६ एकड़ तक ही जमीने हैं। शेष घरों का जमीन के बहुत छोटे से हिस्से पर ही कब्जा है। १६६० में, इस गांव में बेहतर मजदूरी के लिए दिहाडी हड़ताल हुई थी। उस समय रोजाना मिलने वाली दिहाड़ी २.५ किलो कच्चे ध ान से बढ़ाकर ३.५ किलो कर दी गई। गांव में पिछले कुछ समय से दिहाड़ी तथा गैर मजरूआ जमीन को लेकर मालिकों से तनाव पैदा होता रहा था।

मालिक फरार होता है। पुलिस अदालत में जाती ही है कि प्रस्तावित जब्ती आदेश की खबर संबद्ध व्यक्ति के घर वालों को मिल जाती है। फिर अदालतें इतने महत्वपूर्ण निर्णय को इस ढंग से टालती हैं कि जब्ती प्रक्रिया में कई दिनों की देर हो जाए ताकि जब्त की जाने वाली ज्यादातर चल संपत्तियां अपने स्थान से हटा दी जाएं। तब पुलिस हरकत में आती है, लेकिन जब्ती -कुर्की के लिए कोई संपत्ति न पाकर, पुलिस शराफत से गांव छाड़ देती है। मेन में दलितों की हत्या के बाद यही हुआ।

ज़मानत की अर्जियों पर भी न्यायपालिका इस बात को मद्देनजर रखकर ही विचार करती है कि अभियुक्त कौन है। जिन गरीबों को गिरफ्तार कर अदालत में लाया जाता, अक्सर कई दिनों की यातना के बाद, उन्हें खतरनाक अपराधी मानकर जेल भेज दिया जाता है। जब भी उनके परिवार वाले किसी तरह पैसा जोड़कर जमानत की अर्जी करते हैं, उसे साफ नामंजूर कर दिया जाता है। लेकिन मालिकों को आमतौर पर पहली सुनवाई में ही जमानत मिल जाती है। सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के रामाधार सिंह 'डायमण्ड' के मामले में यह साफ दिखाई पड़ा, जिसे बिना अदालहत में पेश हुए, हत्याओं के १८ मामलों जमानत मिल गई। मेहनतकश गरीबों में से जिन भाग्यवानों को जमानत मिल भी जाती है, उन्हें कई दिनों तक दिल दहला देने वाले अनुभवों से गुजरना पड़ता है। मीलों दूर अदालत में पेशी देने के लिए उन्हें अपनी दैनिक मज़दूरी से भी हाथ धोना पड़ता है।

१९९१ के आखिरी महीनों और ज्यादातर इस वर्ष के दौरान, कृषि संधर्षों के मामलों को कुख्यात कानून टाडा के दायरे में लाया गया है। आतंकवादी और विध्वंसकारी गतिविधियां (निरोधक) कानून (टाडा), पंजाब में आतंकवाद रोकने के नाम पर लाया गया था परन्तु आज इस कानून के तहत गिरफ्तार अधिकतर लोग अन्य राज्यों में कृषि संघर्ष से जुड़े हैं। टाडा मामलों की तादाद तेज़ी से बढ़ती ही जा रही है और इसके तहत अधिकांश अभियुक्त गरीबा हैं। जहानाबाद में टाडा के अंतर्गत गिरफ्तार किए गए ५८ लोगों में से दो मालिक पक्ष से हैं और गया में ११८ गिरफ्तार लोगों में भी सिर्फ दो मालिक हैं। इस तरह टाडा ने उन लोगों के लिए जमानत को और मुश्किल बना दिया, जो पहले से ही ऐसे अधिकारों से वंचित हैं।

इन तरीकों के अलावा, प्रशासन के पास हिंसा को रोकने के अन्य प्रत्यक्ष उपाय भी हैं। इनमें निजी बंदूक लाइसेंस पर नियंत्रण भी शामिल है। इस संबंध में प्रशासन शून्य में है: उसके पास जारी लाइसेंसों का कोई हिसाब नहीं है क्योंकि ये लाइसेंस देश में कहीं से भी प्राप्त किए जा सकते हैं। इस तरह निजी सेनाओं के हथियार उनके हाथों में सुरक्षित हैं। दूसरी ओर, चुंकि गरीब अग्निशस्त्र रखने की हैसियत नहीं रखते, इसलिए उनके पास यदि हथियार हैं तो वे गैर कानूनी ही होंगे। इसी कारण दलित टोलों में छापे मारे जाते हैं और जिनके पास हथियार मिल जाएं, उन्हें हिंसक कार्यवाईयां करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिया जाता है। लेकिन निजी सेनाओं को इस ढंग से पकड़ने का प्रश्न ही नहीं उठता, आखिरकार दलित टोले पर धावा बोलने को तैयार निजी सेना में शामिल लोगों के पास वैध हथिार जो ठहरे !

निजी सेनाऐं राजनीतिक संरक्षण के बल बूते पर ही प्रशासन का सहयोग और समर्थन हासिल करती हैं। प्रशासन से जिस तरह का समर्थन इन्हें मिलता है, वह एक मायने में इनकी सामाजिक शक्ति का आधार है, क्योंकि मेहनतकश गरीब जनता का उत्पीड़न तभी संभव हो पाता है जब कि पुलिस सचेत रूप से इन सेनाओं के पक्ष में खड़ी हो।

नारायणपुर (गया) में, जहां सनलाइट सेना ने नरसंहार किया, भुइंया और यादव जाति के कुछ छोटे किसानों ने टीम को बताया कि पुलिस का इन निजी सेनाओं के सदस्यों के साथ चोली-दामन का साथ है और वे प्रायः साथ-साथ घूमते देखे जा सकते हैं। उनमें से एक ने कहा, "पुलिस को पैसे के बल पर कंट्रोल कर लिया।" साथ ही यह भी बताया कि पुलिस छोटे किसानों के हितों की ओर निगाह ही नहीं डालती।

लेकिन दमनकारियों की सामाजिक सत्ता को मजबूत करने में पुलिस की भूमिका, खुद पुलिस महानिदेशक के एक कथन से, साफ तौर पर खुलकर सामने आती है:

> पुलिस में यह प्रवृति पाई गई कि बचाव दस्तों (निजी सेनाओं) को नक्सलवादियों के खिलाफ संगठित होकर लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाए . . . . यह पुलिस के वास्तविक काम के विपरीत था, जिसकी वजह से बिहार में विभिन्न जातिगत सेनाओं का उद्भव हुआ।

(बिहार में उग्रवादियों और सेनाओं की गतिविधियां: १९८६ में पेश किया गया नीति दस्तावेज)

जहानाबाद में एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के साथ अपनी पहली ही भेंट के दौरान टीम को पता लगा कि निजी सेनाओं के कर्ता-धर्ता प्रशासन से क्या अपेक्षाऐं रखते हैं। उन्होंने बताया कि सवर्ण लिबरेशन फ्रंट के सदस्य अस्लियत में एक बंधुआ प्रशासन चाहते हैं, जो उनके हितों के अनुरूप ही काम करे। अतः उनमें से कोई यदि नक्सलवादियों द्वारा मार दिया जाता है, तो वे उम्मीद करते हैं कि कम से कम सौ लोग गिरफ्तार किए जाऐं। दूसरी ओर जब ये सेनाऐं, ग्रामीण गरीबों का बड़ी संख्या

इंदिरा आवास योजना

अरवल शहर व सोन नहर के बीच में ०.२७ एकड़ भूमि का वह टुकड़ा है जिसे सरकारी रिकार्ड में 'गैर मजरूआ खास' का दर्जा दिया गया है। एम.के.एस.एस. के नेतृत्व में नौ भूमिहीन परिवारों ने इस जमीन पर अपनी आवास योजना शुरू करके झोपड़ियां डाल ली। २४ जनवरी १९८६ को एक स्थानीय जमींदार के गुण्डों द्वारा ये झोपड़ियां गिरा दी गईं। १९ अप्रैल को एम. के.एस.एस. द्वारा इस मुद्दे पर एक बैठक बुलाई गई। अचानक पुलिस ने सभा पर फायरिंग शुरू कर दी, जिसमें २३ जाने गईं। इस घटना के बाद एम.के.एस.एस. को प्रतिबंधित घोषित कर दिया गया। गया जिले के जहानाबाद सब-डिवीजन को पुलिस जिला बना दिया गया । बाद में जहानाबाद को एक जिला घोषित कर दिया गया।

जहानाबाद के पहले डी. एम. , श्री सिरोही ने हाल ही मे शुरू हुई 'इंदिरा विकास योजना' को व्यवहार में लाने का निश्चय किया। इस योजना के तहत ३८ मूसहर परिवारों को अलबेला नगर व परसौना के गांवों की गैर मजरूआ भूमि पर बसाया गया। क्षेत्र की इस सबसे उत्पीड़ित जाति को ऊपर उठाने के लिए १८ परिवारों को पक्के घर बनाने के लिए पैसा दिया गया व एक-एक एकड़ भूमि का आबंटन किया गया।

प्रत्येक परिवार को १०,५१६ रुपये देना निश्चित किया गया। जिस ठेकेदार को ये रुपये बांटने का काम सौंपा गया, उसने मूसहरों को केवल ७००० से ९००० रुपये के बीच ही रकम दी। १९९० का बरस आने तक परसौना गांव के खेतों में १७ पक्के घर बन कर तैयार हो चुके थे। इस प्रकार एक टोला बनने की शुरूआत हुई। इस दौरान तीन कच्ची झोपड़ियां भी डाल दी गईं। स्थानीय जमींदार वर्ग के लिए, इन पक्के घरों का बनना, उनकी शक्ति व इज्जत का खुला अपमान था। इस प्रकार इन पक्के घरों ने गांव में एक तनाव को जन्म दिया। मूसहरों के टोले को कई बार धमकियों का सामना करना पड़ा।

१ जनवरी १९९२ को एक स्थानीय जमींदार बालेश्वर शर्मा की पास के एक गांव मननपुर में मार्क्सवादी लेनिनवादी संगठनों द्वारा हत्या कर दी गई। बालेश्वर शर्मा के एस.एल.एफ. से गहरे सम्बंध थे। उसके भाई द्वारा पुलिस में जो प्राथमिकी दर्ज कराई गई, उसमें ३४ लोगों के नाम थे। इनमें ५ उन लोगों के नाम भी शामिल किए गए जो परसौना के पक्के घरों के निवासी थे।

कुछ दिन बाद पुलिस टोले में आई। पुलिस को देखकर टोले के सभी लोग खेतों में भाग गए। किन्तु भागते हुए रामेश्वर मांझी को पुलिस ने पकड़ लिया। बालेश्वर की हत्या के अभियुक्तों में उसका नाम न होने पर भी उसे बेरहमी से पीटा गया व गिरफ्तार कर लिया गया। और इसके बाद पुलिस द्वारा टोले के घरों की 'चल-संपत्ति की जब्ती' की कार्यवाई प्रारम्भ हुई।

जिला प्रशासन के अनुसार, किसी अभियुक्त के फरार रहने पर जब्ती के आदेश न्यायलय द्वारा दिये जाते हैं। कोर्ट द्वारा ऐसा आदेश होने पर पुलिस, जब्ती की कार्यवाई प्रारम्भ करती है । सभी वस्तुओं की एक सूची बनाई जाती है और गांव से एक गवाह इस सूची पर हस्ताक्षर करता है। अभियुक्त के न्यायालय में प्रस्तुत होने पर जब्त की गई चीज़ों को उसे वापस सौपना होता है ।

परसौना में पुलिस द्वारा की गई जब्ती की कार्यवाई हत्यारों द्वारा मचाई गई लूट से कम न थी। कार्यवाई में टोले के सभी घरों को शामिल कर लिया गया जबकि अभियुक्तों में केवल ५ लोगों का नाम इस टोले से था। सभी घरों के दरवाजे तोड़ डाले गए, व चौखटों को बाहर निकाल दिया गया। अनाज रखने के बर्तनों को तोड़ डाला गया। चारपाइयां तोड़ डाली गईं व बिस्तरे फाड़ दिये गए। कच्चे घरों का तो नामो-निशान तक नहीं बचा। 'जब्त' की गई वस्तुओं में चौखटें, कृषि- उपकरण, बर्तन व औजार शामिल हैं। इस सामान की कोई सूची नहीं बनाई गई। इस प्रकार यह जब्ती की कार्यवाई न होकर एक प्रकार से लूटपाट थी।

बाद में अभियुक्तों ने अपने आप को न्यायालय में पेश कर दिया। इस प्रकार दो बरस पहले बसा टोला अब पूरी तरह से उजड़ चुका है। कोई भी व्यक्ति अब वहां नहीं रहता। यह थी इंदिरा आवास योजना के तहत प्रदान किए गए आवासों की कहानी।

में कत्ल करती हैं और अगर इसके लिए जिम्मेवार लोगों को गिरफ्तार किया जाता है, तो कानून के शासन पर अमल को रोकने के लिए सत्ता के गलियारों तक में तमाम तरह के संपर्कों का फायदा उठाने की कोशिश की जाती है।

झिटकौरिया के खेतिहर मजदूरों से बात करते वक्त टीम को पुलिस के बारे में स्थापित इस धारणा का अंदाजा लगा। पड़ोस के गांव मननपुर के एक जमींदार की हत्या के मामले में पुलिस ने इन्हें बुरी तरह परेशान किया। उनका मानना है कि गांव के भूस्वामियों ने जान-बूझकर उन्हें इस मामले में फंसाया क्योंकि हाल ही में गांव के गरीब, मज़दूरी की लड़ाई जीते थे। मननपुर घटना के बाद झिटकौरिया में पुलिस का आना एक नियमित बात हो गई। पुलिस लुटेरों की भांति गांव में आती – सामान लूटती, झोंपड़े तोड़ती और औरतों को मारती-पीटती। और गांव के पुरुष गिरफ्तारी से बचने के लिए भाग खड़े होते। पुलिस की सबसे क्रूर कार्यवाइयों में से एक है, घर में रखें सारे अनाज, मसालों, सरसों और दालों को मिलाकर बेकार कर देना इस तरह पुलिस ग्रामीण शोषकों के हाथ में औज़ार का काम करती है और उन्हें मेहनतकश गरीबों के प्रतिरोध को कुचलने का हथियार मुहैया कराती है। मजदूरों ने टीम से बातचीत में यह बात बार-बार कही कि उनके संघर्षों के बावजूद दमन का रूप बदला है, दमन कम नहीं हुआ।

इस दमनचक्र का अगला कदम फर्जी मुठभेड़ें हैं, जिनका इतिहास भारत के क्रांतिकारी आंदोलनों जितना पुराना है, लेकिन बिहार में यह रवैया अभी नया है। फर्जी मुठभेड़ों में राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को मारकर, पुलिस निजी सेनाओं की बाहुबल शक्ति में ही इजाफा कर रही है। एम.सी.सी. के एक एरिया कमांडर अकेला को पुलिस ने गया में अतरी के पास एक गांव से पकड़ लिया। अगले दिन उसकी लाश घलौरघाटी में पाई गई। पुलिस के अनुसार वह मुठभेड़ में मारा गया। चैनपुर (भभुआ) में एम. के.एस.एस. के चार कार्यकर्त्ता मार डाले गए और अभी हाल में हज़ारीबाग के बड़का गांव में एम.सी.सी. के छह समर्थकों को मार डाला गया। बिहार से टीम के लौटने के बाद १८ मई १९९२ को शकरगंज में पुलिस द्वारा दो ग्रामीणों को संग्राम समित के कार्यकर्ता होने के संदेह में मार डाले जाने की खबर है।

राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर विधायिका के सदस्यों और गरीबों पर दमन करने वाली निजी सेनाओं के बीच संबंध, सामाजिक शक्ति की शायद सबसे घिनौनी अभिव्यक्ति है। इस वीभत्स तथ्य का उद्‌घाटन इस बात से होता है कि निर्वाचित नेताओं को संविधान की रक्षा की शपथ दिलाई जाती है जिसमें जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा अहम है, जबकि इन्ही नेताओं द्वारा संरक्षण प्राप्त निजी सेनाऐं अपने प्रभाव वाले क्षेत्रों में जिंदगी और मौत का अधिकार अपने हाथ में ले लेती हैं। लाठी-बंदूक के जोर पर बूथ लूटना और अपनी मनमर्जी से वोट देने-दिलाने में उनकी हमालावर भूमिका से सब परिचित है। निजी सेनाओं के नेताओं में राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं का जाग्रत होना कुछ समय से दिखाई पड़ा है जो शायद अभिजात समुदाय में शक्ति के बदलते रूप को अभिव्यक्त करता है। राजनीतिक दलों द्वारा संरक्षण प्राप्त करने और चुनाव के समय तैनात होने वाले इन सेनाओं के सरगना अब खुद ही इस दौड़ में शामिल होने के लिए मचल रहे हैं, यही कारण है कि गया जेल में रहते हुए रामाधार सिंह ने मखदुमपूर विधान सभा क्षेत्र से चुनाव लड़ने की इच्छा ज़ाहिर की। चुनावी दौड़ में ऐसे खूंखार अपराधियों के प्रवेश ने प्रतिनिधि मूलक जनतंत्र की संस्थाओं को एक नया ही अर्थ प्रदान किया है।

एक असमान समाज में जनतांत्रिक प्रक्रिया की इन विशिष्टताओं ने उत्पीड़ित गरीब ग्रामीण आबादी को और ज्यादा हाशियों पर धकेल दिया है। तीनडीहा के दलितों को पिछले चुनाव की खबर तक नहीं लगी। कोइरीडीह के निवासियों ने बताया कि मतदान केंद्र सनलाइट सेना के सदस्य छोटे खान के घर पर लगाया गया था जिससे उनका वोट देना बिल्कुल भी संभव नहीं हो पाया। मेन में दलितों को आज तक मत-पत्र की शक्ल तक देखना नसीब नहीं हो पाया। बारा में दो मतदान केंद्र सवर्णों के मोहल्ले में लगाए गए थें। किसी दलित या पिछड़ी जाति के व्यक्ति को मत देने की अनुमति नहीं थी। नारायणपुर (जहानाबाद) में दलितों को पुलिस ने बूथ-कब्जा रोकने के नाम पर गिरफ्तार करके रखा था।

इस तरह चुनावी प्रक्रिया ग्रामीण अभिजात वर्ग के प्रतिनिधियों या उनके हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों को ही विधान सभा और संसद तक पहुंचाती है। जबकि गांव में उनकी तांकत का इस्तेमाल कई जनसंहारों का कारण रहा, विधायिकाओं में उनके प्रतिनिधित्व ने उन्हें जवाबदेही होने से बचाया। एक ऐसे राज्य में जहां विधायक स्वयं खूनी लड़ाई-झगड़े में लिप्त हों – वैशाली में हेमंत साही (जो खुद कई मामलों में अभियुक्त था) की हत्या तथा पप्पू यादव और आनंद मोहन के बीच की जंग – वहां अपराध की राजनीति की वैधता निर्विवाद है।

दर असल जिस हद तक उत्पीड़नकारी, कानून के शासन के दायरे से बाहर होते जाते है, और ताकत का मनमाना इस्तेमाल करते है, उतनी ही उनकी आपराधिकता को सामाजिक मान्यता मिलती जाती है। चूंकि ये उत्पीड़नकारी तत्व अपने हितों के पक्ष

में राज्य सत्ता को मोड़ने का सामर्थ्य रखते हैं, इसलिए वे न सिर्फ राज्य-सत्ता के औजारों को अपने अनुरूप बनाने में सफल रहे हैं, बल्कि उन्होंने राज्य को अपने अपराधों में सहभागी भी बना लिया है। इस ढांचे के अंदर तो राज्य के लिए यही वाजिब प्रतीत होता है कि वह अपने ही नीति निर्देशक सिद्धातों के प्रति सिर्फ होंठ हिलाता रहे और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को अंदर से पलट दे। इस तरह पटना, जहानाबाद और गया के समकालीन ग्रामीण परिदृश्य में मेहनतकश लोग न सिर्फ उत्पीड़कों के अपराधी वर्ग बल्कि एक अपराधी राज्य के खिलाफ खड़े हैं, जिन दोनों की विश्वदृष्टि न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के विरोध में जाकर ठहरती है।

१९९१-९२ में हुई हत्याऐं

दिनांक	स्थान	ज़िला	मृतकों की संख्या	हमलावर
१.१.९१	केसरी	रोहतास	११	अपराधी गिरोह
७.१.९१	पहाड़पुर	वैशाली	७	अपराधी गिरोह
३.२.९१	विष्णुपुर	बेगूसराय	७	पुलिस (फायरिंग)
१९.२.९१	तिसखोरा	पटना	१४	किसान संघ
११.४.९१	दरियापुर	गया	३	अपराधी गिरोह
३०.५.९१	हरपुर-सैदपुर	समस्तीपुर	४	पुलिस (फायरिंग)
४.६.९१	मलबरिया	पलामू	९	सनलाइट सेना
२२.६.९१	देवचंद, सहियारा	भोजपुर	१४	किसान संघ
१२.७.९१	संग्रामपुर	सारन	४	अपराधी गिरोह (भूमि विवाद)
२१.७.९१	बेरिया	पटना	२	पुलिस (फायरिंग)
२३.७.९१	बेनीपट्टी	मुधुबनी	३	पुलिस (फायरिंग)
२६.७.९१	रेलीगरिया	हजारीबाग	९	कोयला माफिया
१९.८.९१	बेनीबाग	मुजफ्फरपुर	३	पुलिस (फायरिंग)
१५.९.९१	पेठिया	किशनगंज	३	पुलिस (फायरिंग)
२१.९.९१	सावनबीघा	जहानाबाद	७	सवर्ण लिबरेशन फ्रंट
२३.९.९१	करकटबीघा	पटना	४	किसान संघ
२५.९.९१	कोडरमा	सहरसा	५	अपराधी गिरोह
२.१०.९१	तीनडीहा	गया	७	सनलाइट सेना
२२.१२.९१	रामपुर चई	जहानाबाद	२	सवर्ण लिबरेशन फ्रंट
२३.१२.९१	मेन, बरसीवां	गया	१०	सवर्ण लिबरेशन फ्रंट
८.१.९२	झारगुडा	पलामू	४	अपराधी गिरोह
८.२.९२	चैनपुर	भभुआ	४	पुलिस (मुठभेड़)
१२.२.९२	बारा	गया	३९	एम.सी.सी.
२०.३.९२	बराहनी	पलामू	३	अपराधी गिरोह
८.४.९२	कीता	पलामू	८	पार्टी यूनिटी
१६.४.९२	शकरगंज	जहानाबाद	२	पुलिस (मुठभेड़)
१६.९२	बड़का गांव	हजारीबाग	६	पुलिस (मुठभेड़)

यह सूची अखबारों की रपटों के आधार पर बनाई गई है, इसके पूरी तरह से सही होने का दावा नहीं किया जा सकता।

ये फसल उमीदों की हमदम
इस बार भी ग़ारत जायेगी
सब मेहनत, सुब्हों शामों की
अब के भी अकारत जायेगी

खेतों के कोनों, खुदरों में
फिर अपने लहु की खाद भरो
फिर मिट्टी सींचो अश्कों से
फिर अगली रुत की फ़िक्र करो

फिर अगली रुत की फ़िक्र करो
जब फिर इक बार उजड़ना है
इक फ़सल पकी तो भर पाया
जब तक तो यही कुछ करना है

— फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

प्रकाशकः सचिव, पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स (पी. यू. डी. आर.)
प्रतियों के लिएः डा. सुदेश वैद, डी-२, स्टाफ क्वार्टर, आई. पी. कालेज, दिल्ली ११००५४
सहयोग राशिः ५ रु. (डाक खर्च अतिरिक्त)
Printed at Crescent Printing Works Pvt. Ltd. P-14, Connaught Circus, New Delhi-110001. Ph. : 345146